CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

31:3/50

वैष्णव संगीत शास्त्र
द्वितीय खण्ड

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, कचौड़ी
वाराणसी-5

ग्रन्थालय
वाराणसी-५
3/50

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अ: 3/50
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदा
वाराणसी-5

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

जड़ावकुँवर राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

आम्नाय-ग्रन्था
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

२३

मणिपुरी नर्तनालय, कलकत्ता को संगीत नाटक अकादमी,
दिल्ली से प्राप्त आर्थिक सहायता से प्रकाशित

वैष्णव-संगीतशास्त्र

[द्वितीय खण्ड]

श्रीकृष्णदास कविराजगोस्वामी प्रणीतम् श्रीगोविन्दलीलामृतम्
(२२ और २३ सर्ग), महाकवि श्रीकर्णपूर विरचिता श्रीआनन्द-
वृन्दावनचम्पूः (२० वा स्तवक) एवं श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती
विरचित श्रीकृष्णभावनामृत (१९ वा सर्ग)

सम्पादक

गुरु विपिन सिंह

अनुवादक

मदनलाल व्यास

प्रस्तावना

दर्शना झवेरी

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक एवं वितरक

वाराणसी | दिल्ली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक

चौखम्भा ओरियन्टालिया

पोस्ट बाक्स नं० १०३२

वाराणसी-२२१ ००१ (उ० प्र०) भारत

टेलीफोन : ६३३५४ टेलीग्राम : गोकुलोत्सव

शाखा—बंगलो रोड, ९ यू० बी० जवाहर नगर

(करोड़ीमल कालेज के पास)

दिल्ली-११० ००७ फोन : २९११६१७

© चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्रथम संस्करण १९९०

मूल्य रु० ४०-००

मुद्रक :

श्रीगोकुल मुद्रणालय

गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी-२२१ ००१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

JADAVKUNMAR RASTRABHASHA SERIES

NO. 23

Published with the financial aid received from Sangeet Natak Academy, Delhi to Manipuri Nartanalaya, Calcutta

VAISNAVA SANGEETA SHASTRA

(Part II)

Shri Govindaleelamrutam (22nd & 23rd chapters)
by Shri Krishnadas Kaviraj Goswami, Shri
Anandavrindavanchampoo (20th chapter)
by Mahakavi Shri Karnapur and Shri
Krishnabhavanamruta (19th chapter)
by Shri Vishwanath Chakravarty

Editor

GURU BIPIN SINGH

Translator

MADANLAL VYAS

Introduction

DARSHANA JHAVERI

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

A House of Oriental and Antiquarian Books

VARANASI DELHI

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Publishers :

CHAUKHAMBHA ORIENTALIA

Post Box No. 1032

VARANASI-221 001 (India)

Telephone : 63354 Telegram : Gokulotsav

Branch—Bungalow Road, 9 U. B. Jawahar Nagar

(Near Kirorimal College)

DELHI-110 007 Phone : 2911617

© *Chaukhambha Orientalia*

First Edition : 1990

१. संगीत का विकास और विभूतियाँ [संगीतशास्त्र] श्रीपद बन्द्योपाध्याय [१९७६] ५–००

२. मणिपुरी नर्तन । दर्शना झवेरी तथा कलावती देवी । भूमिका हरेकृष्ण मुखोपाध्याय एवं कपिला वात्स्यायन [११७८] २५–००

३. स्वर और रागों के विकास में वाद्यों का योगदान । [संगीत-शास्त्र] । इन्द्राणि चक्रवर्ती । प्रस्तावना कु० प्रेमलता शर्मा [१९७९] ३५–००

४. वैष्णव संगीतशास्त्र । घनश्यामदास विरचित । रागरत्नाकर, गीतचन्द्रोदय तालार्णव तथा श्री श्री भक्तिरत्नाकरः [पञ्चमतरंग का संगीतशास्त्र] संस्कृत तथा हिन्दी अनुवाद । अनुवादक—गजाननरानडे शास्त्री तथा मदनलाल व्यास सम्पादक गुरुविपिन सिंह प्रस्तावना दर्शना झवेरी [१९८१] ८०–००

5. Jhaveri Darshana, Kalavati Devi Manipuri Tāla Prakāsh [1989] 75–00

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पादकीय

मणिपुर के संगीत और नृत्य गुरु रास, एवं संकीर्तन में जिन सब ग्रन्थों के गीतों का व्यवहार करते हैं एवं जिन ग्रन्थों से प्रयोजनीय विषय लेकर यह शास्त्रीय नर्तन धारा प्रवाहित है, उनमें से कुछ ग्रन्थों का महत्व का अंश लेकर ही हमारा यह संग्रह-ग्रन्थ संकलित है। ग्रन्थ के आरम्भ में हमारे महावैष्णव ग्रन्थकारों का संक्षिप्त परिचय प्रदान करने का मैं प्रयास कर रहा हूँ, जिसे मैं अत्यन्त प्रासंगिक मानता हूँ। उनके रचना-सौकर्य की क्षमता, मनीषा को अभिव्यक्त करने में हमारी लेखनी सबल नहीं है, फिर भी उनकी मर्त्यलोक-ऌीला के कुछ अंश को व्यक्त करने की दुःसाहसिक प्रचेष्टा पाठकों के समक्ष निवेदित है। यह समस्त वैष्णव-साहित्य मणिपुर-संस्कृति में वेदवाक्य स्वरूप है, अलंघनीय है, इसीलिए मणिपुर के नृत्य-गीत के विषय में आलोचना हेतु वैष्णव साहित्य का यथार्थ ज्ञान वांछनीय है।

कविकर्णपूर : परम भागवत वैष्णव चूड़ामणि कवि कर्णपूर का जन्म ई० १५२४ में आज के पश्चिम बंगाल के हुगली जिले के कांचनपल्ली या काँचरापाड़ा में हुआ। उनकी अद्भुत काव्य प्रतिभा के विषय में कहा जाता है कि बाल्यकाल में केवल सात वर्ष की आयु में उन्होंने अपने माता-पिता के साथ नीलाचल की यात्रा की। वहाँ प्रातःकाल श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन के समय बालक कर्णपूर ने उनके पदांगुष्ठ को अपनी जिह्वा द्वारा आस्वादन किया एवं विशुद्ध संस्कृत भाषा में एक अपूर्व श्लोक की रचना कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया। बालक कर्णपूर की वह श्लोक-आवृत्ति सुनकर श्री महाप्रभु ने उन्हें 'पुरीदास' नाम से सम्बोधित किया।

उनका वास्तविक नाम था परमानन्द सेन और उनके पिता का नाम श्री शिवानन्द सेन। शिवानन्द के तीनों पुत्र महाप्रभु के भक्त-शिष्य थे। "चैतन्यचरितामृत" के आदि पर्व में है :—

> 'चैतन्यदास, रामदास आर कर्णपूर।
> शिवानन्देर तिनपुत्र प्रभूर भक्त शूर॥' (१०।६२)

कवि की विख्यात रचना है 'चैतन्यचन्द्रोदय' नामक संस्कृत नाटक। उन्होंने 'श्रीगौरगणोद्देशदीपिका', 'आनन्दवृन्दावनचम्पू' 'श्रीचैतन्यचरित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकाव्य', 'आर्याशतक', 'कृष्णाह्निक कौमुदी', 'अलंकार कौस्तुभ', 'दशक-स्कन्धटीका', 'चैतन्यसहस्रनामस्तोत्र' इत्यादि बारह ग्रन्थों की रचना की। इस विषय में विशेष उल्लेखनीय यह है कि कवि कर्णपूर विरचित 'कृष्णाह्निक कौमुदी' ग्रन्थ ही पद्मपुराण के पाताल खण्ड के ५२ वें अध्याय में जिस नित्यलीला की कथा वर्णित है, उसका आश्रय लेकर अष्टकालीन नित्यलीला का प्रथम ग्रंथ है। परवर्ती काल में इस ग्रन्थ से प्रेरित होकर वैष्णव कवियों ने श्रीकृष्ण की अष्टकालीन लीला विषयक विविध काव्यादि की रचना की।

कवि-विरचित 'श्री आनन्दवृन्दावनचम्पू', चम्पू काव्य का एक अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है। इस ग्रन्थ के सप्तदश एवं विंश स्तवक में श्रीश्रीराधा-कृष्ण की अनुपम रासलीला वर्णित है। मणिपुर के गुरुओं ने इस ग्रन्थ के गीतों का रासलीला में व्यवहार किया है। श्री कोञ्जेंगबम धन सिंह महाशय विरचित श्रीश्रीहरिसंकीर्तन ग्रन्थ में स्वर्गीय कोञ्जेंगबम आतोयाइमा के ग्रन्थ से एक उद्धरण मिला है। यह वसन्तरास में किया जाता है। गीत का प्रथमांश इस प्रकार है—"चन्द्रावली निजसखी निकरेण···" इत्यादि। यह विंश स्तवक में है। इसके अलावा और एक बात ध्यान में रखनी होगी कि मणिपुर के नृत्य-गुरुओं ने श्री जयदेव रचित 'गीत-गोविन्द' के अनुसरण से इस वसन्तरास की रचना की, किन्तु उसके होरी खेल अंश की रचना आनन्दवृन्दाबनचम्पू के एकविंश स्तवक के अनुसरण से की। विंश स्तवक में रास के वर्णन क्रम में जो बातें कही गई हैं, मणिपुर के गुरुजन उनका बहुत ध्यान रखते हैं।

श्रीकृष्णदास कविराज : वर्तमान वर्धमान जिले के काटोया के झामटपुर नामक ग्राम के एक वैद्य-परिवार में शक–१४२८ में परमभागवत, कविप्रवर श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी का जन्म हुआ। बाल्यकाल में ही उन्हें पितृवियोग हो गया। क्रमशः उम्र बढ़ने के साथ परवर्ती समय में वे हरि-प्रेम में उन्मत्त हो उठे। संस्कृत साहित्य के सुपण्डितवर कवि श्री नित्यानन्द के स्वप्नादेश से श्रीवृन्दावन गये और अपना शेष जीवन उन्होंने वहीं बिताया। वे श्री रघुनाथ दास गोस्वामी के शिष्य थे।

प्रत्येक वैष्णव के पास रहने वाला भागवत् स्वरूप ग्रन्थ 'श्रीचैतन्य-चरितामृत' उनके द्वारा ही रचित है। इस ग्रन्थ में काव्य, दर्शन, जीवन तथा विभिन्न शास्त्रों के गहन ज्ञान का परिचय मिल जाता है।

दाक्षिणात्य निवासी श्रीपाद बिल्वमङ्गल ने स्वयं श्रीकृष्ण के साक्षात्कार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से उन्मत्त होकर प्रलापावस्था मे 'श्रीकृष्णकर्णामृत' को जन्म दिया। कविराज गोस्वामी ने इस कर्णामृत की 'सारंग रंग दा' नामक टीका की रचना की।

कवि की और एक 'अमृतमय रचना है 'श्रीगोविन्दलीलामृतम्'। २३ सर्गों के इस ग्रन्थ में २५८८ श्लोक हैं, जो अष्टकालीन लीलामय महाकाव्य हैं। इस महाकाव्य के बाईसवें एवं तेईसवें सर्ग में रासलीला और रासलीला के नृत्य गीत आदि के विषय में अपूर्व, सुललित वर्णन है। इस ग्रन्थ में बाईसवें सर्ग में हल्लीसक, गान, स्वर, ग्राम, श्रुति, तान, मूर्छना और रागरागिनी के नाम और लक्षण दिये हुए हैं। इसके अलावा विविध वाद्यों का उल्लेख है। हस्तकभेद, ताल-मानादि, गीत व नृत्य के प्रकार एवं प्रणाली इत्यादि शास्त्रीय विषयों की बहुत सुन्दर आलोचना इसके तेईसवें सर्ग में हुई है। इस ग्रन्थ से कई गीतों का व्यवहार मणिपुर के रास में किया जाता है।

उदाहरण स्वरूप 'नृत्यन्तीत्थं···', 'ता ता स्ता त्थै···' इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती : गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के अन्यतम विख्यात कवि, साधक श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ने षोडश शताब्दी के अन्त में (१५७६ शकाब्द, मतान्तर से १५८६ शकाब्द) मुर्शिदाबाद जिले के सागरदीघी थाना के अन्तर्गत देवग्राम में जन्म ग्रहण किया। उनके पिता का नाम है श्रीरामनारायण चक्रवर्ती। नरोत्तम ठाकुर के शिष्य गंगानारायण चक्रवर्ती के दत्तकपुत्र थे कृष्णचरण, इस कृष्णचरण के पुत्र सैदायाद निवासी श्रीराधारमण चक्रवर्ती से कवि ने मंत्र दीक्षा ग्रहण की।

विवाह योग्य आयु के पूर्व ही विवाहित होते हुए भी इन्होंने सांसारिक जीवन व्यतीत नहीं किया। संसार त्याग कर वृन्दावन में इन्होंने जीवन-यापन किया। १६१० शकाब्द के बाद उनकी और कोई कृति उपलब्ध न होने के कारण मोटे तौर पर ऐसा अन्दाज किया जाता है कि उनके इहलीला–संवरण का समय इसी के आसपास होगा। इस साधक कवि के परमपाण्डित्य ने भक्तिमार्ग में महान उत्कर्ष प्राप्त किया था, इस प्रसंग में उनके एक शिष्य कृष्णदास ने एक सुन्दर एवं सार्थक श्लोक की रचना की।

"विश्वस्य नाथरूपोऽसौ भक्तिवर्त्म प्रदर्शनात्।
भक्तश्चक्रे, वर्तितत्वात् चक्रवर्त्याख्ययाभवत्॥"

इनके रचनासंग्रह की पर्यालोचन करने पर हम उन्हें एक साथ परम-भक्त, दार्शनिक, रसवेत्ता, कवि एवं वैष्णव चूडामणि के रूप में जान सकते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। उनके द्वारा रचित मूलग्रन्थ हैं—'श्रीकृष्णभावनामृत', 'श्रीगौरांगलीलामृत'. ऐश्वर्य्यकादम्बिनी', 'स्तवामृतलहरी', 'सिन्धुबिन्दु', 'उज्ज्वलकिरण', 'भागवतामृतकणा', 'रागवर्त्मचन्द्रिका', 'माधुर्यकादम्बिनी', 'गौरगणस्वरूपतत्त्वचन्द्रिका', 'चमत्कारचन्द्रिका' एवं 'क्षणदागीतचिन्तामणि'।

इनके अलावा भी उनके विख्यात टीकाग्रन्थ हैं—श्रीमद्भागवत की 'सारार्थदर्शिनी', गीता की 'सारार्थदर्शिनी', उज्ज्वलनीलमणि की 'आनन्दचन्द्रिका', भक्तिरसामृतसिन्धु की 'भक्तिसारप्रदर्शिनी', गोपालतापनी की 'भक्तहर्षिणी', 'ब्रह्मसंहिता' की टीका, दानकेलिकौमुदी की 'महती' आनन्दवृन्दावनचम्पू की 'सुखवर्त्तनी', अलंकार कौस्तुभ की 'सुबोधिनी', चैतन्यचरितामृत की टीका, प्रेमभक्तिचन्द्रिका की टीका इत्यादि।

उनके द्वारा रचित अनुपम काव्य 'कृष्णभावनामृत' के विख्यात श्लोक का गोविन्दजी मन्दिर में अनुष्ठित वसन्तरास में व्यवहार किया जाता है—

"कच्छपीकाभिस्र ए मृदंगे ······"।

यह उदाहरण श्री सुरचान्द शर्मा सम्पादित 'मैतैईजगोई' ग्रन्थ के षष्ठ खण्ड के नवम् पृष्ठ पर दिया हुआ है।

श्रीनरहरि चक्रवर्ती : अष्टादश शताब्दी के आरम्भ में विख्यात वैष्णवकवि श्रीनरहरि चक्रवर्ती का आविर्भाव हैं। उनकी रचना के अनुसार पता चलता है कि उनका पूर्व निवास गंगा-तट पर था एवं उनके पिता जगन्नाथ श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती के शिष्य थे। पुनः, एक अन्य ग्रन्थ से पता चलता है कि उनका जन्म ईसवी सप्तदश शताब्दी के अन्त में मुर्शिदाबाद जिले के रेंगापुर या रेंगाग्राम में हुआ। किन्तु 'भक्ति रत्नाकर' ग्रन्थ में उल्लिखित अन्यान्य कवियों के रचनादर्शन से लगता है कि उनका आविर्भावकाल अष्टादश शताब्दी का प्रारम्भ ही है। प्रारम्भिक काल में सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए भी परवर्ती काल में उन्होंने ब्रजमण्डल में ही निवास किया।

उनके द्वारा रचित ग्रन्थों में उल्लेख योग्य हैं—'भक्तिरत्नाकर', 'नरोत्तमविलास', 'श्रीनिवासचरित्र', 'गीतचन्द्रोदय', 'छन्दःसमुद्र', 'गौरचरितचिन्तामणि', 'नामामृतसमुद्र', पद्धतिप्रदीप' एवं 'संगीतसार-संग्रह' इत्यादि। इस प्रसंग में एक तथ्य अवश्य उल्लेखनीय है कि कवि नरहरिचक्रवर्ती रचित एक ग्रन्थ बंगाल में विलुप्त होते हुए भी वह मणिपुर में अक्षत अवस्था में उपलब्ध है, वह ग्रन्थ है 'रागरत्नाकर'। बंगाल में इस ग्रन्थ के उपलब्ध न होने के कारण इसका उल्लेख भी कहीं नहीं मिलता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस ग्रन्थ 'रागरत्नाकर' में रागों के ध्यान दिये गये हैं और रागों के विभाग आदि किये गये हैं। हमारे 'वैष्णव संगीत शास्त्र' (प्रथम भाग) में इस ग्रन्थ को पूरा शामिल किया गया है। जिस कारण मणिपुर के शास्त्रीय नृत्य-गीत में व्यवहृत गीतादि ही हमारे ग्रन्थ की उपजीव्य सामग्री है, इसीलिए नरहरि चक्रवर्ती के अन्य ग्रन्थ 'गीतचन्द्रोदय', 'भक्तिरत्नाकर' 'संगीतसारसंग्रह' हमारे लिये अत्यन्त मूल्यवान हैं। 'गीतचन्द्रोदय' में नृत्यगीतादि के सम्बन्ध में आलोचना करते हुए भी ताल के विषय में (अष्टम परिच्छेद) अत्यन्त उच्चस्तर की आलोचना है। 'भक्तिरत्नाकर' ग्रन्थ में श्रीमन्महाप्रभु के समय में आविर्भूत एवं उनके परवर्ती काल के भक्तों का जो वृत्तान्त है, विविध अञ्चलों का जो वृत्तान्त मिलता है, वह असाधारण है, इसी ग्रन्थ के पञ्चम तरंग में नृत्य, गीत, वाद्य आदि के अत्यन्त सूक्ष्म एवं शास्त्रीय विषय की आलोचना की गई है। नाट्यशास्त्र और तदनुसारी ग्रन्थों आदि के उद्धरणों से यह ग्रन्थ नृत्य-गीत की दृष्टि से अत्यन्त उच्चस्तर का हो गया है। 'संगीतसारसंग्रह' में भी संगीत के औपपत्तिक विषय के गहन ज्ञान का परिचय है।

मात्र पदकर्ता के रूप में ही नहीं, बल्कि संगीतज्ञ के रूप में भी नरहरि चक्रवर्ती की विशेष महिमा का अनुभव किया जाता है।

उपरोक्त वैष्णव कवियों की जीवनी को देखने पर समझा जाता है कि तत्कालीन गौड़ीय वैष्णव समाज आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं शास्त्र-विचार में पारंगत होते हुए भी नृत्यगीतादि के विषय में अत्यन्त सचेष्ट थे, क्योंकि उन्होंने श्रीराधाकृष्ण की लीलाओं को उनके जीवन-स्वरूप माना है, उसी लीला में शास्त्रीय नृत्यगीतादि का प्राधान्य उन्होंने हृदय से स्वीकार किया है एवं उसका ही प्रमाण उनकी रचनाओं के पद-पद में मिलता है। इन सब कवि-कृतियों के आधार पर ही मणिपुर के नृत्य-गुरुओं की असामान्य रचना की सृष्टि हुई है।

मणिपुरी नर्तनालय,
१५–ए विपिन पाल रोड,
कलकत्ता–७०००२६.

गुरु विपिन सिंह

आम्नाय–ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

EDITORIAL

The classical Manipuri dance owes its centuries old existence and continuance to the Vaishnava treatises. At the outset I have tried to give a brief introduction to the Vaishnava authors. This I feel is very relevant. While I am not competent enough to express fully the capability of the Vaishnavas in writing and in intellect, I have tried to put forth some aspects of their acts. In Manipuri culture, this whole Vaishnava literature is like the Vedas—a gospel of truth which is inviolable. Therefore to discuss the dance and music of Manipur one should have full knowledge of Vaishnava literature, and shastras.

Poet Karnapoor: Parambhagvat, Vaishanava-Chudamani poet Karnapoor was born in 1524 AD in Kanchanpalli or Kanchrapada of Hugli district, West Bengal. It is said that at the tender age of only seven years on a visit to Neelachal with his parents, child Karnapoor while having a darshan of Shri Mahaprabhu tasted the foot of the Mahaprabhu with his tongue and surprised many scholars present there by composing a unique Sanskrit sloka. Hearing this sloka from child Karnapoor, Mahaprabhu addressed him as 'Puridas'.

His original name was Paramanand Sen and his father's name was Shri Shivanand Sen. All the three sons of Shri Shivanand were disciples and devotees of Mahaprabhu. In Adiparva of 'Chaitanyacharitamrut' we find a sloka as under.

'Chaitanyadas, Ramdas aar Karnapoor'
Shivanander tinputra Prabhur Bhaktashoor' (10/62)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

The poet's famous work is a Sanskrit drama—Chaitanya Chandrodaya. He wrote twelve books which include Shrigaurganoddeshdeepika, Anandavrindavan Champoo, Shri Chaitanya Charita Mahakavya, Aryashatak, Krishnahnik-Kaumudi, Alankarkaustubh, Dashakskandhateeka, Chaitanyasahasranamstotra. It is noteworthy that Poet Karnapoor's Krishnahnik-Kaumudi is the first work of eight seasonal eternal divine play based on eternal divine plays as described in the 52nd chapter of Patalkhand of Padmapuran. Vaishnava poets of later periods were inspired by this work and composed various poems regarding Shrikrishna's eight seasonal eternal divine plays.

Poet's Shri Anandavrindavan Champoo is the finest work of Champoo poetry. In 17th and 20th chapters of this treatise, Rasleela of Shri Radhakrishna has been excellently described. Manipuri Gurus have used songs of this treatise in Rasleela. In Shri Konjengbam Dhana Singh's book Shri Shri Harisamkeertan, we find a quotation from the book of late Konjengbam Atoyaima. This is used in Vasant-Ras. The first part of the song is 'Chandravali Nijasakhi Nikarena'. This is taken from the 20th chapter. Besides, it should also be noted that while the dance Gurus of Manipur composed the Vasant-Ras in accordance with the Geet Govinda of Poet Jayadev, the Hori part of the Vasant-Ras is composed in accordance with the 21st chapter of Anandavrindavan Champoo. The sequence of Ras as described in the 20th chapter is given a lot of attention by Manipuri Gurus.

Shri Krishnadas Kaviraj : Parambhagvat poet Shrikrishnadas Kaviraj Goswami was born in Vaidya family

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

of Jhamatpur village of Katoya (modern Burdwan district) in Shaka 1428. His father expired while he was still young. Shri Krishnadas Kaviraj immersed himself in devotion .to the Lord Hari. On getting directions from Shri Nityanand in his dream the sanskrit scholar poet Kaviraj went to Vrindavan and spent the rest of his life there. He was a disciple of Shri Raghunath Das.

Shri Chaitanya Charitamrut was written by this scholar poet and every Vaishnava keeps this treatise as Bhagwat. From this treatise we can fathom his profound knowledge of poetry, philosophy, human life and various scriptures.

Shripad Bilwamangal of South had a vision of Lord Krishna and Shrikrishnakarnamrut took shape under the effects of the vision. Kaviraj Goswami wrote a commentary on this Karnamrut named 'Sarang Rangada'.

Another nectar like treatise by the poet is Shri Govindaleelamrutam. This treatise has 23 Chapters and 2, 588 slokas. This is an epic of eight seasonal eternal divine play. In 22nd and 23rd chapters of this epic, Rasleela and dance and music of Rasleela has been described excellently. In the 22nd chapter of this epic names and characteristics of Hallisak, Gaan, note, Gram, Shruti, Taan, Murchana and Rag-Ragini have been described. Apart from this, description of various instruments have been given also. In the 23rd chapter of the epic subjects like hand-gestures, tal, song and dance systems have been elaborately discussed. Many songs from this epic are used in Ras of Manipur. For

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

example following can be quoted—'Nrityantitham...', 'Ta ta sta thei...'.

Shri Vishwanath Chakravarty : Celebrated poet, devotee of Gaudiya Vaishnava cult, Shri Vishwanath Chakravarty was born at the close of the 17th century (Shaka 1576 or according to another view Shaka 1586) in Devagram of Sagardeeghi Thana of Murshidabad district. His father's name was Shri Ram Narain Chakravarty. Shri Krishnacharan was an adopted son of Shri Ganganarain Chakravarty, a disciple of Shri Narottam Thakur. Poet Vishwanath Chakravarty was initiated by Shri Krishnacharan's son Shri Radharaman Chakravarty of Saidayad.

Vishwanath Chakravarty was tied in matrimony at an early age, however, he did not lead a family life and spent his life in Vrindavan till the end. As no works of his are available which can be dated after Shaka 1610 it is generally inferred that he passed away sometime around this time. The poet devotee attained the greater heights in his devotion. In this context one of his disciples had composed an appropriate and fine sloka which is quoted below.

'Vishwasya Nathroopoisau Bhaktivartmapradarshanat
Bhaktashchakre Vartitatvat Chakravartyakhyaya-
bhavat'.

On close observation of his works we find him an ardent devotee, philosopher, erudite scholar of the theory of emotions, poet and a jewel among Vaishnavites all rolled in one. His main works are 'Shrikrishnabhavanamrut', 'Shrigaurangleelamrut', 'Aishwaryyakadambini', 'Stawamrutalahari', 'Sindhubindu', 'Ujjwalkiran', 'Bhagwatamrutakana', 'Ragvartmachandrika'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'Madhuryakadambini', 'Gaurganaswarooptattwachandrika', 'Chamatkarachandrika' and 'Khsanadageetachintamani'.

Apart from these, his famous commentaries are 'Sararthadarshini' of Shrimatbhagwat, 'Sararthadarshini' of Geeta, 'Anandchandrika' of Ujjwalaneelamani, 'Bhaktisarpradarshini' of Bhaktirasamrutasindhu, 'Bhaktaharshini' of Gopaltapani, commetary of Brahmasamhita, 'Mahati' of Dankelikaumudi, 'Sukhavartini' of Anandvrindavanchampoo, 'Subodhini' of Alankarakaustubha, commentary of Chaitanya Charitamrut, commentary of Premabhaktichandrika, etc.

A famous sloka of his excellent epic Krishnabhavanamrut is used in Vasant Ras presented in Govindaji temple. The sloka is 'Kacchapikabhistra e Mridange...'. This is cited on page 9 of 'Maitei Jagoi' (sixth part) edited by Shri Surchand Sharma.

Shri Narahari Chakravarty : The famous Vaishnava poet Shri Narahari Chakravarty belonged to the beginning of 18th century. It can be inferred from his works that he lived on the banks of the Ganga. His father, Shri Jagannath was the disciple of Shri Vishwanath Chakravarty. According to another reference, he was born around the end of the 17th century in Rengapur or Rangagram of Murshidabad district. But according to the compositions of other poets in 'Bhakti-Ratnakar', he was born in the beginning of the 18th century. While he lived a family life in his early age, he passed the later life in Brij.

Among his noteworthy works are 'Bhakti Ratnakar', 'Narottamvilas', 'Shrinivascharitra'. 'Geetchandrodaya', 'Chhandasamudra', 'Gaurcharitachintamani', 'Namam-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

rut Samudra', 'Paddhatipradeep', 'Sangeet-sar-sangrah', etc. It is worth mentioning that one treatise written by Shri Narahari Chakravarty is available in full in Manipur, although it is believed to be lost in Bengal. This treatise is 'Rag Ratnakar'. In Bengal, since it is believed to be lost there is no reference to this book found there.

In this treatise, Rag Ratnakar, meditative poems-Dhyanmurti of Ragas and divisions of Ragas are given. The book has been included in its complete form in our 'Vaishnava Sangeet Shastra-Part I'. Songs are the main assets in Manipuri dance and music, hence, the other works of Shri Narahari Chakravarty like 'Geetchandrodaya', 'Bhakti Ratnakar' and 'Sangeetsar-sangrah' are most valuable for us. In 'Geetchandrodaya' apart from music and dance study of tala (time measure) is of high order in its 8th Chapter. In 'Bhakti Ratnakar' description of the devotees of Chaitanya Mahaprabhu period and period thereafter as well as of devotees of different regions is unique. In the 5th chapter of this treatise we find some subtle discussions on dance, songs, instruments, etc. Along with the quotations from the Natyashastra and other works this has become a treatise of high standard from the point of view of dance and music. In 'Sangeet-sar-sangrah' we find detailed discussions on the theoretical aspects of music.

Narahari Chakravarty's glorious works not only exude the brilliance of a composer of padas but also of a musicologist.

From the lives of the above mentioned Vaishnava poets we can understand that Gaudiya Vaishnava society

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

of that period, apart from being expert in spirituality and philosophy of the scriptures, was also actively devoted to music and dance. These Vaishanava poets have taken Radhakrishna's eternal play as their lives and in this leela domination of classical dance and music has been accepted. The evidence of this is found in their works. On the basis of the works of these poets, dance-gurus of Manipur created extraordinary compositions.

Manipuri Nartanalaya
15-A Bipin Pal Road
Calcutta-700026

Guru Bipin Singh

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तावना

वैष्णव संगीत शास्त्र (द्वितीय खण्ड) में श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रणीत श्रीगोविन्दलीलामृतम् के बाईसवें एवं तेईसवें सर्ग, महाकवि कर्णपूर विरचित श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू का रासविलास नामक बीसवाँ स्तवक और श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती विरचित श्रीकृष्णाभावनामृत का उन्नीसवाँ सर्ग संकलित है। वैष्णव संगीतशास्त्र (प्रथम खण्ड) में पं० नरहरि चक्रवर्ती-घनश्याम-दास के तीन ग्रन्थों—राग-रत्नाकर, गीतचन्द्रोदय-तालार्णव और श्रीभक्ति-रत्नाकर के पञ्चम तरंग के संगीतांश का समावेश था।

वैष्णव संगीतशास्त्र (प्रथम खण्ड) में राग, ताल, रासलीला के अपूर्व अलौकिक स्वरूप के वर्णन के साथ-साथ संगीत के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है जबकि वैष्णव संगीतशास्त्र (द्वितीय खण्ड) मूलतः भक्तिपरक है, जैसा कहा गया है कि वैष्णव धर्म का एक ही रस है—भक्ति। भक्ति ही सर्वोपरि है। इन तीन ग्रन्थों में रास के दिग्दर्शन के माध्यम से स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्छना, राग, जाति, हल्लीसक नृत्य, अनिबद्ध-निबद्ध गीत, ध्रुपद, नायक-नायिका भेद, तौर्यत्रिक, हस्तक आदि का विवेचन प्रसंगानुसार हुआ है। रास के प्रसंग में बताया गया है कि गोपियाँ श्रीकृष्ण की शक्तिस्वरूप हैं और इसी सिद्धान्त के आधार पर राधा-कृष्ण नृत्य का उदात्तरूप उजागर किया गया है।

श्रीगोविन्दलीलामृतम् का यह 'रासलीला विलास' नामक बाईसवाँ सर्ग राधा-कृष्ण के मिलन में गोपियों की भूमिका से आरम्भ होता है। उसके साथ ही वृन्दावन की प्राकृतिक शोभा और यमुना के कृष्ण-मिलन की उत्कण्ठा का वर्णन है। यमुना के तट पर हल्लीसक नृत्य होता है और यहीं पर रासलीला का विशेष प्रकार प्रकट होता है। इसी अवसर पर श्रीकृष्ण ने गीत, जाति, तीन ग्राम, श्रुति, मूर्छन, तान, गमक आदि का प्रदर्शन किया। श्रीकृष्ण ने जिन ग्रामों व रागों का प्रदर्शन किया उनसे इस ग्रन्थ की प्राचीनता प्रमाणित होती है। विशेषतया गान्धार ग्राम के प्रदर्शन से यह तथ्य सामने आता है कि मणिपुर के वैष्णव गन्धर्वों की भूमि के हैं, जो गीत-नृत्य के प्रति समर्पित थे। उल्लिखित राग भी प्राचीन हैं। बाद में मुरज, डमरु, डप, वीणा आदि वाद्यों व हस्तकों पर प्रकाश डाला गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रात्रिविलास नामक तेईसवें सर्ग के प्रबन्ध गान के वर्णन के साथ-साथ रङ्गस्थल पर नृत्य का ढङ्ग बताते हुए पाटाक्षर दिये गये हैं। रास के वाद्यों के स्वरूप, स्वरालाप, जाति, श्रुति, मूर्छना, गमक, ध्रुपद का विशेषत्व बताने के साथ-साथ राधा-कृष्ण के मिलन को आत्मा-परमात्मा के मिलन की संज्ञा दी गई है। गोपियों का जमीन का आधार छोड़कर निरालम्ब नृत्य करना उनके शक्तिस्वरूपा होने का प्रमाण है। नायिका-भेद के वर्णन में श्रीराधा की स्वाधीनभर्तृका अवस्था मूर्त हुई है। वारिविहार का वर्णन अद्भुत है।

महाकवि कर्णपूर विरचित श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पू के रासविलास नामक बीसवें स्तवक में श्रीकृष्ण द्वारा नृत्य विशेष के विधान से गोपियों के मन में विलक्षण आनन्द और सम्पूर्ण जगत् में आश्चर्य की सृष्टि का वर्णन है। यहाँ गोपियों के मण्डलाकार हल्लीसक नृत्य का अद्भुत वर्णन है, और रमणीमण्डल की शोभा का भी। इस अलौकिक नृत्य से प्रमुदित देवताओं में नृत्य की लालसा जाग उठी और गीत-वाद्य-नर्तन की अधिष्ठात्री देवियाँ मूर्त होकर यहाँ उपस्थित हुईं। विभिन्न हस्तकों, ताल, प्रबन्ध, बिरुद, स्वर, राग, श्रुति, वाद्य, अङ्गहार आदि के वर्णन के अलावा यह भी बताया गया है कि चल-अचल वीणा की परीक्षा गोपियों के कण्ठ से की गयी, क्योंकि गोपियों का कण्ठ ब्रह्म सृष्टि से भी परे माना गया है।

आलिंगन, चुम्बन, अधरपान, और रसमय वार्तालाप, हास्ययुक्त कटाक्ष आदि विशेष रासक्रीड़ा-कौतुकों को अनुभव करनेवाले स्त्री-समूह के साथ श्रीकृष्ण का रम्यरमण या विशुद्ध बालसुलभ भाव से रमण। लेखक ने जल क्रीड़ा, सुरतक्रीड़ा, मधुपान का वर्णन करते हुए कहा है कि कृष्ण का शरीर घनानन्द स्वरूप है, उस रूप से उसी की स्वरूप गत ह्लादिनी शक्ति राधा और इतर शक्तियाँ गोपाङ्गनाओं के रूप में विराजमान थीं।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती विरचित श्रीकृष्णभावनामृत के उन्नीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण से सखियों के मिलन की राधा की युक्ति और प्रेम से खोजने वाले को हृदय में धारण करने के श्रीकृष्ण के अभंग व्रत का वर्णन है। राधावेशधारी कृष्ण और कृष्णवेशधारी राधा के अलौकिक प्रेम में विपरीतता का आनन्द मिलता है। प्रहेलिका के माध्यम से लेखक ने वंशी, ततवाद्य, ग्राम, मूर्छना आदि का रूप समझाया है और शुद्ध जीवात्मा का ज्ञान दिया है। यमुना पुलिन को मदन के कीर्ति रूप जल का सरोवर, उस पर खड़ी गोपिकाओं को स्वर्णकमल और श्रीकृष्ण को कमल की नीलरत्नमय बताना अद्भुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपमा है। इस शोभावर्णन के साथ ही श्रुति, स्वर, गमक, राग के प्रदर्शन के साथ अधिष्ठात्री देवियाँ प्रकट होती हैं। कच्छपी वीणा और मृदङ्ग वादन के साथ श्रीकृष्ण अभूतपूर्व नृत्य दिखाते हैं। श्रीकृष्ण की ये लीलाएँ रासकर्म से अलग नहीं हैं—इससे रासक्रीड़ा का यथार्थ स्वरूप जाना जा सकता है।

वैष्णव विद्वानों ने कृष्ण भक्ति की अनुभूति की अभिव्यञ्जना के शास्त्रीय तत्वों का आधार लिया तथा अपनी आवश्यकता के अनुसार प्राचीन ग्रन्थों से चयन किया और उसे राधाकृष्ण की रसपूर्ण लीला में एकरस कर स्तरीकरण के लिए एक निश्चित रूप प्रदान किया। मणिपुर के गुरुओं ने इन सब ग्रन्थों के अन्तर्निहित तत्वों को आत्मसात किया एवं उस प्रेरणा से ही विविध रासलीलाओ को शास्त्रीय प्रतिष्ठा प्रदान की। इन ग्रन्थों के उपयुक्त अंशों को लेकर मणिपुरी शैली का विकास हुआ है।

इस ग्रन्थ का सम्पादन मणिपुरी नृत्य के विद्वान गुरु विपिन सिंह ने किया है। प्रतिभाशाली नृत्य शिल्पी, नृत्य शिक्षक, सर्जनशील कलाकार एवं स्वरूप नियोजक गुरु विपिन सिंह अध्येता एवं अनुसंधानकर्ता हैं। मणिपुरी नृत्य के पुनरुज्जीवन, प्रचार-प्रसार में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। उनके द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों से मणिपुरी नृत्य को गति मिली है और इस चैतन्यमय कला की जटिलताओं को समझने में सहायता। गुरु विपिन सिंह ने इसका अध्ययन किया और इसके संपादन एवं अनुवाद की आवश्यकता महसूस की। इस कार्य में 'न्यायतीर्थ', एवं 'वेदान्ताचार्य' की उपाधियों से विभूषित पं० गजानन रानडे शास्त्री का पूरा सहयोग रहा। इसका अनुवाद स्वतन्त्र पत्रकार एवं संगीत-समीक्षक श्रीमदनलाल व्यास ने किया, जो संस्कृत, हिन्दी एवं बंगला के विद्वान हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए संगीत नाटक अकादमी दिल्ली से मणिपुरी नर्तनालय को आर्थिक सहायता प्राप्त हुई, इसके लिए हम अकादमी के आभारी हैं।

इसके सुन्दर मुद्रण एवं प्रकाशन के लिए मैं वाराणसी की संस्था चौखम्भा ओरियन्टालिया की कृतज्ञ हूँ।

—दर्शना झवेरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

INTRODUCTION

Vaishnava Sangeeta Shastra-Part II includes 22nd and 23rd chapters of Shri Krishnadas Kaviraj Goswami's Shri Govindaleelamrutam, 20th chapter named Rasvilas of Mahakavi Karnapoor's Shri Anandavrindavanchampoo and 19th chapter of Shri Vishwanath Chakravarty's Shri Krishna bhavanamrita. In Vaishnava Sangeeta Shastra Part I. Pt. Narahari Chakravarty's three books viz. Raga Ratnakara, Geetachandrodaya-Talarnav and the parts on music of the 5th chapter of Shri Bhakti Ratnakar were included. These three books elaborately deal with Raga, Tala and elements of Rasleela emphasising the form of music while Vaishnava Sangeeta Shastra (Part II) describes the devotional aspect of Madhura Bhakti as epitom of all the Rasas. The following three books of Part II describe Ras, Swara, Shruti, Gram, Murchhana, Raga, Jati, Hallisak dance, Anibaddha-Nibaddha geet, Dhrupad, Nayak-Nayika, Tauryatrik, hand gestures etc. Vaishnavites believe that the Gopies are the embodiments of Shrikrishna's manifestations. This belief aesthetically reveals the highest artistic expression in the composition of Rasleela which is beautifully represented in these three books.

The 22nd chapter viz. Rasleelavilas of Shri Govindaleelamritam describes the role of Gopies during the union of Radha Krishna. It also depicts the beauty

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

of flora and fauna of Brindavan and eagerness of River Yamuna to share the joy of union of Radha and Krishna. Rasleelavilas reveals a special type of Rasleela incoiporating Hallisak form of dance. On this occasion Krishna renders Geet, Jatis, three Grams, Shruti, Murchhana, Tans, Gamakas. etc. The Grams and Ragas used by Shri Krishna proves that this book has taken inspiration from our old treatises on dance and and music. It also refers to the musical instruments like Muraj, Damaru, Dap, Veena, etc. and hand gestures.

In the 23rd chapter named "ratrivilas", Prabandhas are described alongwith the dance movements. It also describes the importancc of instruments, swaralaps, jatis, shrutis, etc. of Rasleela. It explains union of Radha and Krishna as the union of individual soul with the universal soul. It vividly portrays Radha as Swadhinbhartrika Nayika. The description of Varivihar is unique,

The 20th chapter of Mahakavi Karnapoor's Shri Anandavrindavanchampoo reveals Gopies' cosmic joy while witnessing overwhelmingly elegent dance of Shri Krishna. There is a wonderful description of Hallisaka dance of Gopies dancing in a cixcle and beauty of the Ramanimandal. Various hand gestures, time measures, Prabandhas, Birud, swara, shruti, ragas, instruments, body movements are described. The author, while describing the various playing activities like Jalkrida, Surata kreeda, Madhupan, states that body of Sri krishna is an embodiment of eternal bliss and Gopies are described as the form of his Hladinishakti and other forms of energies.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

The 19th chapter of Shri Vishwanath Chakravarty's Shrikrishnabhavanamruta, describes the celestial love of Lord Krishna and Radha as they are shown adorning each other's garments. The author describes enigmatically the form of flute, string instrument, gram, murchhana, etc. It explains knowledge of pure soul. It also describes dances of Lord Krishna, accompanied by Kachhapi Veena and mridang vadan, as significant parts of Rasleela.

Vaishnava scholars have skillfully utilised the classical elements of dance and music, taking inspiration from the old treatises of dance and music which enabled them to give a beautiful form to the creation of Rasleela. In turn the Manipurisurus took inspiration from these Vaisnavite shastras in order to compose and choreogragh various Rasleelas and Sankirtan and establish them as a classical form of Dance Dramas which have become the essential elements of Manipuri Dancing.

This book has been edited by Guru Bipin Singh. He is a rare combination of a dancer, teacher, scholar and choreographer. He has delved deep into the various vaishnava shastras of dance and music. He has made valuable contributions to the renaissance and propagation of Manipuri dance. With the principles and disciplines determined by him, Manipuri has got a new life. These principles and disciplines have helped in understanding the complexities of this living art.

In editing this book Guru Bipin Singh was fortunate in obtaining meaningful co-operation of vedantacharya Pt. Gajanan Ranade Shastri. This book has been translated into Hindi by freelance journalist and

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

music critic Ṣhri Madanlal Vyas, who is also a scholar of Sanskrit, Hindi and Bengali.

For the publication of this book, Manipuri Nartanalaya gratefully acknowledges the subsidy given by Šangeet Natak Academi, New Delhi.

Manipuri Nartanalaya is thankful to Chaukhambha Orientalia, Varanasi, for undertaking this publication.

DARSHANA JHAVERI

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय-सूची

(Contents)

पृष्ठ

१ श्रीकृष्णदास कविराजगोस्वामि प्रणीतम् १
श्रीगोविन्दलीलामृतम् २२ और २३ सर्ग Shri Govinda-leelamrutam (22 nd and 23 rd Chapters) by Shri Krishnadas Kaviraj Goswami

२ महाकवि श्रीकर्णपूर विरचिता ४७
श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः २० वाँ स्तबक by mahakavi Shri Karnapoor (20 th chapter) Shri Ananda-vrindavanchampoo

३ श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती विरचित श्रीकृष्णभावनामृत १९ वाँ सर्ग Shri Ksishnabhayanamruta (19 th chapter) by Shri Vishwanath Chakravarty ६७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीगोविन्दलीलामृते

द्वाविंशः सर्गः

तावुत्कौ लब्धसंगौ बहुपरिचरणैर्वृन्दयाराध्यमानौ ।
प्रेष्ठालीभिर्लसन्तौ विपिनविहरणैर्गानरासादिलास्यैः ॥
नानालीलानितान्तौ प्रणयिसहचरीवृन्दसंसेव्यमानौ ।
राधाकृष्णौ निशायां सुकुसुमशयने प्राप्तनिद्रौ स्मरामि ॥ १ ॥

श्रीराधाकृष्ण रात्रि के आरम्भ में अतिशय उत्कण्ठित थे। फिर निशा में परस्पर मिलन की इच्छा पूर्ण हुई। उसके बाद वृन्दादि सखियों ने उनकी अनेक प्रकार से सेवा की। इसके पश्चात् उन परमप्रिय सखियों के अभिलषित दोनों राधा-कृष्ण ने विपिन-बिहार, गायन, लास्य आदि विहार किये। ऐसे अनेक प्रकार के विहार करते हुए, विविध रागों-नर्तनों के अनुष्ठान के बाद वे आनन्दपूरित हुए, किन्तु श्रान्त हो गये। तब उन सखियों ने उन्हें बड़े प्रेम एवं आदर से शीतल जल, ताम्बूल समर्पित किया, फिर वे चरण-संवाहन करने लगीं। तब फूलों की शैय्या पर दोनों निद्रासौख्य में लीन हो गये। ऐसे श्रीराधाकृष्ण का मैं स्मरण करता हूँ ॥ १ ॥

वृन्दा सवृन्दाथ सहालिवृन्दौ ।
वृन्दावनेशावनुनाथ्य नाथौ ॥
तदालयालिन्दमलिन्दशोभं ।
पूर्णेन्दुकान्त्युज्ज्वलितं निनाय ॥ २ ॥

वृन्दा अपनी सखियों के साथ वृन्दावन के स्वामी श्रीराधाकृष्ण को सविनय प्रार्थना कर श्रीराधा के घर के बहिर्भाग की वेदिका पर ले आयी। पूर्णचन्द्र की किरणों से राधा के घर का यह बहिःप्रदेश अतिरमणीय लग रहा है और इसकी शोभा अवर्णनीय है ॥ २ ॥

सा तत्र तौ पुष्पचितान्तरालां ।
सुचीन वस्त्राभरणान्वितायां ॥
कलिन्दकन्यानिलशीतलायां ।
न्यवीविशत् काञ्चनवेदिकायाम् ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेदिका सुन्दर कपड़े से आच्छादित हैं। उस पर अनेक प्रकार के सुगन्धित फूल सजाये हुए हैं। यमुना नदी की लहरों से ठण्डी हवा के झोंके आ रहे हैं। नदी के तीर पर इस सुवर्णनिर्मित वेदिका के ऊपर उन दोनों को विराजमान किया ॥ ३ ॥

आवेशनादालिगणोपनीतैः ।
विंचित्रपुष्पाभरणैश्च माल्यैः ॥
ताम्वूलगन्धव्यजनैः सुतोयैः ।
सा तौ निजेशौ सगणौ सिषेवे ॥ ४ ॥

वहाँ बैठने पर सखियों ने नाना प्रकार के फूलों, मालाओं, आभूषणों, ताम्बूल, सुगन्धित द्रव्यों, पंखा, शीतल जल आदि से अपने स्वामी की सेवा की ॥ ४ ॥

तत्काननं तां रजनीं प्रियास्ताः ।
कृष्णां च तां तत्पुलिनानि तानि ॥
समीक्ष्य कृष्णो हृदि जातयाभवत् ।
स प्रेरितो रासविलासवाञ्छया ॥ ५ ॥

यहाँ बैठने पर अरण्य का सौन्दर्य, रात्रि की शोभा, सब प्रिय सखियाँ, नील-वर्ण यमुना, उसके तीर पर फैला हुआ सफेद रंग का पुलिन आदि सब देख कर श्रीकृष्ण के मन में रासविलासादि क्रीड़ाएँ करने को इच्छा जाग्रत हुई ॥ ५ ॥

सगणोऽरण्यविहृतिश्चक्रभ्रमणवर्तनम् ।
हल्लीसकं युग्मनृत्यं ताण्डवं लास्यमेककम् ॥ ६ ॥
तत्तत्प्रवन्धगानञ्च सनृत्यं रतिनर्मणि ।
जलखेलेत्यमून्येष रासाङ्गानि व्यधात् क्रमात् ॥ ७ ॥

फिर वहाँ श्रीकृष्ण ने सखियों के साथ वन-विहार, मण्डलाकार रचना, चक्राकार भ्रमण, नाचना, हल्लीसक नृत्य, युग्मनृत्य, ताण्डव, लास्य, प्रबन्ध गीतों का एकक गान, नर्तन, रासक्रीड़ा, हास्य-विनोद, जल-विहार आदि रास के सभी अंग किये ॥६–७॥

ज्योत्स्नोज्ज्वलं मन्दसमीरवेल्लितम् ।
स्वसंगमोद्दीप्तवसन्तजृम्भितम् ।
नृत्यन्मयूरं पिकभृङ्गनादितम् ।
ननं समीक्ष्यात्र विहर्तुमैच्छत् ॥ ८ ॥
वंशीगानेन तास्वेष ज्ञापयामास वाञ्छितम् ।
तन्नाम्नैवानुगानेन स ताभिश्चानुमोदितः ॥ ९ ॥

चन्द्र-प्रकाश से चमकनेवाला अरण्य मन्द वायु से दोलायमान हो रहा है। वसन्त के आगमन से उसकी शोभा और बढ़ रही है। मयूर नृत्य कर रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोकिल और भँवरे मधुर ध्वनि कर रहे हैं। ऐसी वनश्री देखकर श्रीकृष्ण ने वन-विहार करने की इच्छा प्रकट की ॥ ८ ॥

श्रीकृष्ण ने मुरली बजाकर अपना मनोगत व्यक्त किया और सखियों ने भी श्रीकृष्ण के नाम का अनुगान कर अपनी सम्मति प्रकट की ॥ ९ ॥

कानने सुधांशुकान्तिशुभ्रमञ्जुविग्रहे।
पुष्पिते समं त्वयाद्य मे प्रियालिवर्ग हे ॥
रन्तुमत्र वाञ्छितानि चित्तवृत्तिरुद्वहेत्।
एवमस्तु कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कान्त हे ॥ १० ॥
उत्थितः स्वरमणीगणसङ्गी वृन्दयाप्यनुगतो मृदु गायन्।
प्रत्यगं प्रतिलतं प्रतिकुञ्जं स प्रदक्षिणतया भ्रमति स्म ॥ ११ ॥

हे प्रिय सखियो ! चन्द्र की अमृतमय किरणों से धवल (सफेद) और सुन्दर फूलों से भरी हुई इस वनश्री में तुम्हारे साथ रतिक्रीड़ा करने की इच्छा मेरे चित्त में उदित हो रही है। श्रीकृष्ण की बात सुनकर सखियों ने कहा, हे प्रिय ! यदि ऐसा है, तो ऐसा ही होने दो ॥ १० ॥

यह उत्तर सुनकर श्रीकृष्ण अपनी प्रिय सखियों के साथ उठे, वृन्दा भी उनके पीछे जाने लगी। और श्रीकृष्ण मधुर गायन करते हुए प्रत्येक वृक्ष, लता और कुञ्ज की प्रदक्षिणा करते हुए घूमने लगे ॥ ११ ॥

मृदुमलयानिलैर्जितलतातरुपत्रचयम् ।
सुमधुरपञ्चमध्वनि कलाचन कोकिलकम् ॥
ध्वनदलिबर्हिणं प्रणयिनीगण-गीतजुषो।
वनमवगाह्य तत् स रमते हरिरत्र मुदा ॥ १२ ॥
मूर्च्छोत्थिता इव पुनर्नवतामिवाप्ताः।
स्नाता इवामृतरसैर्मधुचित्रितावा।
वृन्दावने तरुलतामृगपक्षिभृङ्गा।
आसन् हरेर्वनविहार विलोक हर्षात् ॥ १३ ॥

मलय पर्वत से मन्द-मन्द बहने वाली सुगन्धित वायु से पेड़, लता और पत्ते हिल रहे हैं। कोकिलों के कण्ठ से अति मधुर पञ्चम ध्वनि निकल रही है। मोर और भँवरे केकारव और गुंजन कर रहे हैं। ऐसे वन में प्रवेश कर प्रणयिनी-स्त्रियाँ अन्तःकरण से जिनके गुणों का वर्णन प्रेमपूर्वक कर रही हैं, ऐसे हरि यहाँ आनन्द से रमण करते हैं ॥ १२ ॥

वृन्दावन के पशु-पक्षी, भ्रमर आदि श्रीकृष्ण के विरह से दुःखी थे। श्रीकृष्ण के वन-प्रवेश और उनको नाना क्रीड़ाएँ देखने से उन्हें जैसे मूर्च्छा से नवचेतना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मिली हो या अमृत रस में स्नान किया हो, वे इतने आनन्दित हुए। और वसन्त की शोभा से उनके चित्त में नाना भाव उदित हुए ॥ १३ ॥

कृत्वाग्रे द्विजमृगचञ्चरीकवृन्दम् ।
कृष्णेक्षोत्सुकमटवीप्रहर्षिणीयम् ।
चन्द्रांशूत्करवलिता मरुच्चलारा- ।
दायान्तं त्वरितमिवाभ्युपैति कृष्णम् ॥ १४ ॥

गौराङ्गीणां वपुः कान्तिमिलितेन्दुरुचा वनम् ।
निलिप्तं भाति धौति वा जलेन कलधोतयोः ॥ १५ ॥

उस समय अरण्य ने पशु-पक्षी-भ्रमरों को आगे करके श्रीकृष्ण का स्वागत किया। वे पशु-पक्षी कृष्ण के दर्शन के लिए उत्सुक थे और आनन्द पाने के योग्य भी थे। इसलिए धवल चन्द्र-किरणों से रञ्जित वायु जहाँ वह रही है, ऐसे वृन्दावन में कृष्ण को आते देखकर अरण्य ऐसा लग रहा है जैसे वह स्वर्ण-रजत रस से धोया हुआ हो या उसका लेप लगा हो ॥ १४-१५ ॥

श्रीराधिकाङ्गद्युतिवृन्दसंगमात् ।
कृष्णाङ्गचञ्चद्द्युतयो विरेजरे ॥
सुधांशुमूर्तेर्द्युतिपुञ्जरञ्जिताः।
चलत्तमालागदलालयो यथा ॥ १६ ॥

श्रीराधा के शरीर की कान्ति फैली हुई थी, श्रीकृष्ण की चमकने वाली नील कान्ति उसमें मिल गयी; वह शोभा इतनी मनोरम प्रतीत होने लगी, जैसी कि पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र की अमृतमय किरणें तमालवृक्ष पर गिरने से उसके चञ्चल पत्तों की शोभा मनोरम होती हैं ॥ १६ ॥

श्रीकृष्ण को देखकर वनश्री नर्तकी की तरह नाचने लगी।

स्वागताः स्थ सुखिनः खगा मृगाः ।
शर्म वो लसति किं नगा लताः ॥
भव्यमव्यवहितं मधुपा वः ।
तानपृच्छदखिलानिति कृष्ण ॥ १७ ॥

वन में प्रवेश कर श्रीकृष्ण ने पशु-पक्षियों से और उसी प्रकार पर्वत, वृक्षों, लताओं, भँवरों से पूछा कि आप कुशल हैं या नहीं, आपका कल्याण अखण्डित है या नहीं ॥ १७ ॥

किसलयकरभाक् सुपिष्पिताग्रा ।
मधुपपिकालिनिनादमञ्जुगाना ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पवन गुरु विचालिताटवीयम् ।
हरिमवलोक्य ननर्त नर्तकीव ॥ १८ ॥

जिनके अग्र में फूल फूले हैं; ऐसे पल्लव ही वनश्री के हाथ हैं। भँवरों, कोकिलों की मधुर ध्वनि ही वनदेवी का गाना है। मन्द वायु के झोंकों से हिलने वाली शाखाएँ उसके हस्त हैं और उनका हिलना हस्तपदादि का नर्तन है। वायु-रूपी गुरु वनदेवी को नर्तन सिखा रहे हैं ॥ १८ ॥

राधाकृष्णावन्वनुचलतोऽसंख्यान् भृङ्गान् ।
श्रान्तान् मत्वा पाययितुमिव स्वं माध्वीकम् ॥
वातालीवेल्लत्किसलयहस्तेनोत्फुल्ला ।
शश्वत् प्रेमार्द्राह्वयति मुदा वासन्तीयम् ॥ १९ ॥

श्रीराधाकृष्ण के पीछे चलने वाले असंख्य भ्रमर चलते-चलते थक गये हैं; ऐसा मानकर प्रेम से पुलकित वसन्त की वनश्री अपने पास का मधु उन्हें पिलाने के लिए वायु से हिलने वाली शाखाओं को अग्रहस्तों से बुला रही हैं ॥ १९ ॥

निजकुलधर्ममपोह्य गोपिका ।
सुखयति कृष्णमितीव शिक्षया ॥
अपि सुरभौ स्फुटिताथ तन्मुदे ।
तमलिरुतैरिह नौति मालती ॥ २० ॥

गोपिका अपना कुलधर्म छोड़कर श्रीकृष्ण को सुख देती हैं। यह देखकर वसन्त में फूली मालती लता श्रीकृष्ण के आनन्द के लिए अपने ऊपर बैठे भँवरों के शब्दों से मानों स्तुति कर रही है ॥ २० ॥

चञ्चन्मत्तभ्रमरविलसितापाङ्गालोका कुसुमविहसिता ।
नृत्यन्तीवानिलचलवपुषा मल्लीवल्ली हरिमुदमतनोत् ॥ २१ ॥

मल्लिका लता अपने फूलों के रूप में हँसती हुई और वायु से हिलने वाले अंगों से मानो नाचती हुई श्रीकृष्ण को आनन्द दे रही है। चंचल और उन्मत्त भ्रमर ही उसके कटाक्ष हैं ॥ २१ ॥

स्वसविधमयितं तं वीक्ष्य कृष्णं लताली ।
प्रमुदितविहगाध्वध्वाननान्दीमुखीयम् ॥
मलयजपवनेनोल्लोलसत् पल्लवैजत् ।
करविवृतनयैर्या नृत्यतीवप्रमोदात् ॥ २२ ॥

लताओं की पंक्तियाँ श्रीकृष्ण को आते देखकर आनन्द में मग्न हैं और पक्षियों की ध्वनि से मानों श्रीकृष्ण का स्वागत कर रही हैं और उनके लिए मंगल-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाठ कर रही हैं। मलय पर्वत से आने वाली वायु से उल्लसित पल्लव खुशी में हाथ फैलाकर जैसे नृत्य कर रहे हैं॥ २२॥

प्रणयति कुञ्जावलिरपि गुञ्जार्ततिकृतचित्रा कुसुमविचित्रा।
नवदलतल्पात्यलिपिक जल्पा सदयित कृष्णादिक हृदि तृष्णाः॥ २३॥

वन का कुञ्जगृह भी गुञ्जाओं की लताओं की चित्र-विचित्र आकृतियों से युक्त हैं, नवपल्लवों की शैय्या से सज्ज हैं। भँवरों के गुञ्जारव से ऐसा लगता कि वे बातें कर रहे हैं। वे लालायित हैं कि श्रीकृष्ण प्रिया के साथ आकर इस गृह में विराजमान हों॥ २३॥

राधाशम्पालिङ्गित देहेऽमृतवर्षे।
मन्द्रध्वाने कृष्णपयोदे स्फुरितेऽग्रे॥
केकाध्वानैरुन्नतपिच्छैः शिखिनीभिः।
नृत्यत्यारान्मत्तमयूरावलिरुच्चैः॥ २४॥

श्रीराधारूपी सौदामनी से आलिङ्गित मन्द्रध्वनि करनेवाले, अमृतवर्षा करने वाले श्रीकृष्ण रूपी मेघ को सामने विराजमान देखकर मयूर मयूरियों के साथ अपने पिच्छ-कलाप को ऊँचा पसार कर आनन्द के उन्माद में केकाध्वनि करते हुए नाच रहे हैं॥ २४॥

ध्वनदलिविहगं शीतवातेरितम्।
परिणतफलयुक् चन्द्रिकारूषितम्॥
विकचकुसुमं सत् सौरभं श्रीहरे।
वनमिदमतनोदिन्द्रियाणां मुदम्॥ २५॥

उस समय वृन्दावन में भ्रमरों और पक्षियों के गुञ्जारव एवं कूजन, ठण्डी हवा से हिलने वाले पल्लवों, परिपक्व फलों, चन्द्रकिरणों से रञ्जित प्रस्फुटित फूलों की मधुर सुगन्ध से कृष्ण के सर्वेन्द्रिय आनन्द से परिपूर्ण हो गये॥ २५॥

अथ दरफुल्लमशोकलतास्तबकयुगं वृषभानुसुता।
स्वयमवचित्य हरेः श्रवसोश्चपलकरेण दधौ सुमुखी॥ २६॥

वृषभानुकन्या सुन्दरवदनशालिनी श्रीराधा ने किञ्चित् फूले हुए दो अशोक--लता-गुच्छ स्वयं चुनकर अपने काँपते हाथों से श्रीकृष्ण के कर्णों पर समर्पित किये॥ २६॥

तदनु च चलिता स्वयं हरिणाप्यसौ प्रणयकलहे सदाप्यपराजिता।
तदपि स च तत् करादपहृत्य तत स्तबकयुगलं प्रिया श्रवसोर्न्यधात्॥२७॥

उसके बाद श्रीकृष्ण भी अशोक के फूल लेने के लिए गये। उनके साथ राधा भी चली। दोनों के प्रणय-कलह में राधा की ही सर्वदा विजय होती है। लेकिन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस समय श्रीकृष्ण ने राधा के हाथ से चुने हुए फूल छीन लिये और दो गुच्छ राधा के कानों में धारण करा दिये ॥ २७ ॥

सुकण्ठीभिः कण्ठीरवमधुरमध्याभिरभितः ।
कलं गायन्तीभिः सरसमनुगीतामलगुणः ॥
स्पृशन्नङ्गान्यासां स्तवक कुसुमाद्यर्पणमिषात् ।
अकुण्ठामुत्कण्ठां निभृतरतये वर्धयदयम् ॥ २८ ॥
किलकिञ्चित विव्वोकविलासललितादिकैः ।
कृष्णस्ता भूषिताश्चक्रे स्वसङ्गाद् भावभूषणैः ॥ २९ ॥

मधुरध्वनि युक्त; कम्बुकण्ठवाली और सिंह की तरह पतली कमरवाली व्रजाङ्गनाएँ मण्डलाकार होकर मन्द्रमधुर ध्वनि से गाने लगीं। गाने में वे श्रीकृष्ण के मधुर गुणों का ही वर्णन कर रहीं थीं। श्रीकृष्ण भी पुष्पगुच्छ-समर्पण के निमित्त उनके अंगों को स्पर्श करते हुए उनमें एकान्त सम्भोग की दुर्दम्य उत्कण्ठा की सृष्टि कर रहे थे, उसे बढ़ा रहे थे ॥ २८ ॥

काम का प्रादुर्भाव होने से उन व्रजाङ्गनाओं में अपने आलिङ्गन से किल-किञ्चित्, विव्वोक, विलास, ललित आदि हाव-विलास की विशेष सृष्टि हुई। उन भावों से वे सुशोभित हुईं भावरूपी भूषणों से विभूषित हुईं ॥ २९ ॥

स्ववर्णिताभिर्वल्लीभिरलिध्वनिमिषादसौ ।
अनुनीतोऽनन्दयत्ताः पुष्पादानमिषात् स्पृशन् ॥ ३० ॥
यद्यज्जगौ चन्द्रलतादिकं हरिस्तेनैव पश्चात् प्रियया युतं हरिम् ।
वर्णार्थयोः क्वापि विपर्ययेणताः कृष्णस्य नाम्नाऽनुजगुः क्व चालयः ॥३१॥

श्रीकृष्ण ने जिन लताओं का वर्णन किया, उन लताओं ने भ्रमरों के गुञ्जारव के मिष मानों श्रीकृष्ण का अनुगान किया। और श्रीकृष्ण ने भी फूल लेने के मिष उनका स्पर्श करते हुए उन्हें आनन्दित किया ॥ ३० ॥

श्रीकृष्ण ने वर्ण, अर्थ, शब्द, स्वर, मूर्च्छना आदि से चन्द्रलता आदि वनश्री का वर्णन किया। सखियों ने भी श्रीराधिका सहित हरि का नहीं; शब्दों, वर्णों से अर्थभेद का निर्माण करते हुए वर्णन किया ॥ ३१ ॥

जगदाह्लादकशीलः प्रमदाहृदिवर्धितमसिजपीडः ।
राधानुराधिकान्तर्विलसन् शुशुभे कलानिधिः सोऽयम् ॥ ३२ ॥
जगदाह्लादकशीलः प्रमदाहृदिवर्धितमनसिजपीडः ।
राधानुराधिकान्तर्विलसन् शुशुभे कलानिधिः सोऽयम् ॥ ३३ ॥

सम्पूर्ण विश्व को आनन्दित करने वाला; मानवती तरुण स्त्रियों में आनन्द के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ काम की व्यथा बढाने वाला, राधा और अनुराधा के बीच विलास करता हुआ सर्वकलापारंगत श्रीकृष्ण चन्द्र की तरह शोभायमान हैं।

चन्द्र भी राधा-अनुराधा नक्षत्र के बीच वैशाख की पूर्णिमा में होता है। वह भी कामवर्धक; आह्लाददायक और कलानिधि है। कृष्ण में सोलह कलाएँ हैं, चन्द्र में सोलह। प्रथम श्लोक श्रीकृष्ण का गान करता है। उसका चन्द्र वर्णन से तात्पर्य है। फिर गोपियाँ उसी को कृष्णपरक गाती हैं॥ ३२-३३॥

सम्मालत्यामस्यां मालत्यां मालतीभिः फुल्लाभिः।
संवेष्टित इह परितः पुंनागोऽयं विराजते गहने॥ ३४-३५॥

श्रीकृष्ण पुन्नाग वृक्ष का वर्णन करते हैं। फूली हुई मालती लताओं से घिरा हुआ पुन्नाग-वृक्ष-नागकेसर वृक्ष शोभायमान हो रहा है। गोपियों ने कहा—पुन्नाग यानो पुरुषश्रेष्ठ कृष्ण संफुल्ल मालतीलता रूपी गोपिकाओं से वेष्टित, सुशोभित हो रहा है॥ ३४-३५॥

माधवालिङ्गिता माधवी भ्राजते।
माधवश्चानया फुल्लया राजते॥
विश्वमप्येतयोः संगमानन्दत-
श्चक्षुषी नन्दयन् मोदते सर्वतः॥ ३६-३७॥

माधव यानी वसन्त ऋतु से आलिङ्गित माधवी लता शोभा पा रही है। वसन्त ऋतु होने से माधवी लता फूलों से भरी है। उस लता के फूलने से माधव (वसन्त) भी अधिक सुशोभित हो रहा है। इन दोनों के सयोग के आनन्द से सम्पूर्ण विश्व मानों चारों ओर से स्वयं आनन्दित है; और उसे देखने वालों के नेत्रों को भी आनन्द प्रदान कर रहा है॥ ३६-३७॥

संफुल्ला संफुल्लोन्मिलना मिथ इह वने सदालीमाम्।
काञ्चनवल्ली चासौ सुखदा तापिच्छमौलिश्च॥ ३८-३९॥

इस वन में, जहाँ फूल फूले हुए हैं; सुवर्णवल्ली फूली हुई है। वह फूलों से भरे हुए तमाल वृक्ष के शिखर पर लगी है। उसे देखकर मालूम होता है कि वृक्ष के मिलन से लता बड़ा सुख पा रही है। जब श्रीकृष्ण ने ऐसा कहा, तब गोपियों ने कहा कि तमाल वृक्ष की तरह नीलवर्ण श्रीकृष्ण हैं और उसके ऊपर चढ़ी हुई फूलों से लदी काञ्चनवल्ली राधा है। आनन्द से प्रफुल्ल दोनों का ऐसा मिलन बड़ा सुखप्रद मालूम पड़ता है। परस्पर मिलन से परस्पर की शोभा बढ़ी है॥ ३८-३९॥

शंसन्निव मदनाज्ञां मदयन् हृदयं कलं गायन्।
नवपद्मिनीषु रात्रौ विलसति मधुसूदनश्चित्रम्॥ ४०-४१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रात्रि के समय में भी भ्रमर गुन्जारव करता हुए मानो मदन की आज्ञा का प्रचार कर रहा है और लोगों के अन्तःकरण को उन्मत्त कर रहा है। वह अव्यक्त मधुर स्वर करता हुआ नव-विकसित पद्मिनियों पर विलास कर रहा है। श्रीकृष्ण द्वारा यह बात कहे जाने पर गोपियाँ कहती हैं कि मधुसूदन श्रीकृष्ण हैं और पद्मिनियाँ जैसे गोपियाँ ॥ ४०-४१ ॥

रजनीरमणस्तमसां शमनो ।
नलिनीकुलमुन्महसामपनुत् ॥
शीतगुर्गगने शितिभे विघने ।
सुबभौ कुमुदावक एष मुदा ॥ ४२ ॥

रमणी रमणस्तमसां शमनः ।
खलिनीकुलमुन्महसामपनुत् ॥
शितिगुर्गहने शितिभे विघने ।
विबभौ कुमुदाकर एष मुदा ॥ ४३ ॥

श्रीकृष्ण ने कहा--रजनीपति चन्द्र अन्धकार का नाश कर रहा है और कुमुदिनी को आनन्दित कर रहा है। यह शीत और निर्मल किरणों वाला चन्द्र निर्मल कान्तियुक्त आकाश में रात्रिविकासमान कुमुदों का रक्षक होते हुए शोभायमान हो रहा है। (यह पद्मिनी-वृन्द को दुःख देता है) ॥ ४२ ॥

गोपियाँ कहती हैं--सुन्दर स्त्रियों के मन को आकृष्ट करने वाले, पाप को नाश करने वाले, खल-दुर्जन समूह का आनन्द नष्ट करने वाले, निर्मल कान्तिशाली, नीलवर्णयुक्त कान्ति पूरित घने अरण्य में कुमुदों को विकसित करने वाले (कुमुद सदृश कान्तिशाली) श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे हैं ॥ ४३ ॥

कमलिनी मलिनीकरणे पटु- ।
विधुरिता धुरितानिह चक्रवान् ॥
विविदधद् विधदद् भगणे धृतिम् ।
न स मुदे समुदेति विधुर्मम ॥ ४४ ॥

श्रीकृष्ण ने कहा--चन्द्र कमलिनी लता को मलिन करता है। उसे दुःख देने में वह चतुर है। चक्रवाक पक्षी को वह अपनी प्रिया से अलग करता है और नक्षत्रों के धैर्य को कम करता है। इसलिए यह चन्द्र मुझे आनन्ददायक नहीं लगता ॥ ४४ ॥

स सुहशां सुदृशां रुचिकृद् रुचि- ।
विरहिता रहिता निजतारका ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुविदधद् विदधद् कुमुदावनम् ।
वरमुदे समुदेति विधुर्हि नः ॥ ४५ ॥

गोपियों ने कहा--यह चन्द्र सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियों को आनन्द देता है। अपनी प्रिया तारकाओं का विरह दूर करता है। रात्रि-विकासी कुमुदवन को सुन्दर बनाता है। इसलिए हम गोपियों को सुखप्रद लगता है। यहाँ गोपियाँ कुमुदिनी हैं; उन्हें कृष्णचन्द्र प्रफुल्लित करता है; उनके विरह को दूर करता है ॥ ४५ ॥

इत्थं गायन् मधुरविपिन श्रीभरालोकतृप्तः ।
कान्तावल्लीरपि विरचयन् स्वाभिमर्देन फुल्लाः ॥
भ्रामं भ्रामं भ्रमरनिकरैः स्वानुगैर्वेष्टितोऽसौ ।
ताभिर्वंशीवटविटपिनः कुट्टिमं प्राप कृष्णः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण गाते हुए सुन्दर अरण्य की शोभातिशय से तृप्त हुए, अपनी प्रेयसी रूपी वल्लियों को मर्दनात्मक स्पर्श से आनन्दित करने लगे। पीछे आनेवाले भँवरों के झुण्ड ने कृष्ण के चारों ओर जैसे एक घेरा-सा बना लिया था। भगवान श्रीकृष्ण उन प्रियाओं के साथ घूमते-घूमते वंशीवटवृक्ष की वेदिका के पास आये ॥ ४६ ॥

[श्रीकृष्ण यमुना का दर्शन करते हैं।]

तत्रोपविष्टः स ददर्श कृष्णाम् ।
स्वदर्शनानन्दविवृद्धतृष्णाम् ॥
फेनालिहासां खगनादगानाम् ।
स्वसङ्गमायोत्क हृषीकवर्गाम् ॥ ४७ ॥
स्पर्शोत्सवायोच्छलदूर्मिहस्ताम् ।
लोलाब्जरक्तोत्पलफुल्लनेत्राम् ॥
समुच्छलन्नक्रमुखोञ्चनासाम् ।
आवर्तगर्तोत्सुककर्णपालीम् ॥ ४८ ॥ युग्मकम्

श्रीकृष्ण ने वहाँ बैठकर यमुना के दर्शन किये। श्रीकृष्ण के दर्शन से जिसका आनन्द और दर्शनेच्छा बढ़ गयी है, ऐसी यमुना फेन की धवल पङ्क्ति से जैसे हास्य कर रही है, चक्रवाक, कारण्डव आदि पक्षियों के शब्दों के द्वारा गान कर रही है और अपने साथ (श्रीकृष्ण के) मिलने के लिए इसके इन्द्रियगण उत्सुक हो गये हैं ॥ ४७ ॥

श्रीकृष्ण के स्पर्श का आनन्द अनुभव करने के लिए यमुना तरङ्गरूपी अपने हाथ ऊँचे उठा रही है। हिलने वाले लाल कमल जिसके नेत्र हैं, उछलने वाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मगर जिसके मुख हैं, पानी के भँवरे जिसके नाक हैं और जिसकी कर्णपंक्तियाँ सुनने के लिए उत्सुक हैं ऐसी यमुना ने श्रीकृष्ण के दर्शन किये ॥ ४८ ॥

पुलिनानि समीक्ष्यासौ तत्र रन्तुमना हरिः ।
कृष्णापारं गन्तुकामः समुत्तस्थौ प्रियागणैः ॥ ४९ ॥
अथागतानां स्वजलान्तिकं सा तेषां पदाब्जेषु तरङ्गहस्तैः ।
समर्प्य पद्मान्यथ तानि कृष्णा तैस्तैस्पृशन्तीव मुहुर्ववन्दे ॥५०॥

यमुना के तीर पर वालुकामय मैदान देखकर वहाँ विहार करने वाले श्रीकृष्ण यमुना के पार जाने की इच्छा से अपनी प्रिय गोपियों के साथ उठ खड़े हुए ॥४९॥

अपने जल के पास गोपिकाओं सहित श्रीकृष्ण को आया देखकर यमुना ने अपने तरङ्गरूपी हस्तों से कमल लेकर गोपियों सहित श्रीकृष्ण के चरणों में अर्पित किये । कमल-समर्पण के पश्चात् उनका स्पर्श करने वाली यमुना मानों वार-वार वंदन करने लगी ॥ ५० ॥

गतिशिञ्जिते मुररिपोर्वनितानाम् ।
रुतमभ्यसन्निव निजैर्गतिनादैः ॥
तमिहाभ्युपैति पुरतस्तटकच्छात् ।
कलहंसिकालिवलितः कलहंसः ॥ ५१ ॥
स्खलद् गतितयाच्युतागतिमुदा समृद्धजलतां जगाम यमुना ।
स्वपारमयितुं समुत्कमथ तं समीक्ष्य तनुतां जलोद्धत गतिः ॥५२॥
जानुद्वयसतोयायां कृष्णायां कृष्णतु-तुष्टये ।
गुल्फदध्नजला निर्झराः पुलिनावृताः ॥ ५३ ॥

श्रीकृष्ण की प्रिय गोपिकाओं के नूपुरों की शिञ्जित (मधुर, झनझन) ध्वनि सुन्दर होने से ऐसा लगता था मानों हंस कलहंसिकाओं को साथ लेकर अपनी गति और नाद के साथ उसका अभ्यास करने के लिए तट के पास श्रीकृष्ण के समीप आये हैं ॥ ५१ ॥

श्रीकृष्ण के आगमन से आनन्दित होकर यमुना उछलती थी । आनन्दातिरेक से उसका पानी बढ गया, लेकिन श्रीकृष्ण को परतीर जाने के लिए उत्सुक देख-कर उसने अपनी गति कम की ॥ ५२ ॥

श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए यमुना ने जलस्तर जानु जितना कम किया और पुलिन के इतर झरने भी गुल्फ जितने छोटे हो गये । इस प्रकार यमुना ने श्रीकृष्ण के सन्तोष के लिए व्यवस्था की ॥ ५३ ॥

तीर्त्वा तीर्त्वा सुखेनैतान् क्रमेण निर्झरान् हरिः ।
बभ्राम पुलिनेष्वेषु विहरन् सप्रियागणः ॥ ५४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण ने प्रियाओं के साथ क्रम से उन निर्झरों को पार किया और फिर वे प्रियाओं के साथ पुलिन के प्रान्तभाग में परिभ्रमण करने लगे ॥ ५४ ॥

साकूतसम्मितविलोकननर्मजल्पैः।
आलिङ्गनस्तननखार्पणचुम्बनाद्यैः॥
तासां स्वसङ्गजमनोजविलासतृष्णाम् ।
कुर्वन् मुहुः स विपुलां विललास कृष्णः ॥ ५५ ॥

ततः पुलिनमागत्य स चक्रभ्रमणाभिधम् ।
तत्र रन्तुमनाश्चक्रमारुरोह प्रियागणैः ॥ ५६ ॥

प्रियाओं की ओर साभिप्राय हँस कर देखना, अनेक प्रकार के हास्य-विनोद करना, आलिङ्गन करना, स्तनों पर नखक्षत करना, चुम्बन लेना आदि क्रियाओं से श्रीकृष्ण प्रियाओं के मन में मदनविलास की तीव्र तृष्णा उत्पन्न करने लगे। ऐसा वे बार-बार करने लगे ॥ ५५ ॥

बाद में श्रीकृष्ण प्रियाओं के साथ तटवर्ती चक्रभ्रमण नामक चक्र पर आये और वहाँ विलास करने की इच्छा से उन्होंने चक्र पर आरोहण किया ॥ ५६ ॥

वितस्तिमात्रोच्च निखात शङ्कुग-।
त्रिनेमिचक्रोपरि राधया सह ॥
स्थितः स मध्येऽन्य सखीगणैः क्रमात् ।
बहिश्चकाराथ सुमण्डलत्रयीम् ॥ ५७ ॥

आवृत्य पूर्णंरसधारया हरिं राधोपगूढं किळ मण्डलत्रयी ।
सुवर्णवल्यञ्चितमालशाखिनं स्वर्णालवालालिरिवाबभावसौ ॥ ५८ ॥

तीर पर एक बित्ता ऊँचा स्तम्भ लगा हुआ है। उस पर ऐसा चक्र बिठाया गया, जिसमें तीन नेमि (पहिये की परिधि) हैं। उसके ऊपर मध्य भाग में श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण बैठे और इतर सखियों ने गोलाकार तीन श्रेणियाँ बनाकर विहार करना शुरू किया ॥ ५७ ॥

वहाँ श्रीकृष्ण ऐसे शोभायमान थे, जैसे तमालवृक्ष सुवर्णवल्ली से वेष्टित हो, और सुवर्ण के आलवाल (थाल) से सुशोभित हो। प्रेम रस से परिपूर्ण राधा के आलिङ्गन में श्रीकृष्ण सुवर्णवर्ण की गोपियों के तीन बाह्य मण्डलों से आवृत होकर विराजमान हुए ॥ ५८ ॥

[राधाकृष्ण का साथ नृत्य]

आदिश्य हल्लीसक केलिरङ्गे।
राधामुकुन्दौ ललितादिकालीः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्रांसविन्यस्तभुजौ मिथस्ता- ।
वनृत्यतां लास्यविदां वरिष्ठौ ॥ ५९ ॥
नृत्यन्नितम्बिनीनां तद् वैदग्ध्यपदचालनैः ।
कुलालचक्रवच्चक्रं भ्रमदासीत्तयोरपि ॥ ६० ।

राधाकृष्ण ने अपनी प्रिय सखियाँ ललितादि गोपियों को हल्लीसक नृत्य करने की आज्ञा दी और नर्तन जानने वालों में श्रेष्ठ राधाकृष्ण ने एक-दूसरे के स्कन्ध पर हाथ रख कर नर्तन करना शुरू किया॥ ५९ ॥

नर्तन के समय विशाल नितम्ब वाली उन सखियों के पदविक्षेप चातुर्यपूर्ण और शास्त्रानुसारी होते थे। सखियों का बाहर का चक्र तथा राधाकृष्ण का अन्दर का चक्र कुम्भकार के चक्र की तरह गतिशील होकर घूमने लगा ॥ ६० ॥

विधाय राधां ललिताविशाखयोः ।
मध्ये तदंसार्पितबाहुरच्युतः ॥
गायन् स गायद्भिरलं कदाप्यसौ ।
बभ्राम नृत्यन् सह नर्तकीगणैः ॥ ६१ ॥
लघुभ्रमच्चक्रगतेः समा तासां गतिः क्वचित् ।
क्वचिन्मन्दा क्वचिच्छीघ्रा विविधासीत् प्रिया हरेः ॥ ६२ ॥
तासां द्वयोर्द्वयोर्मध्ये तदंसन्यस्तदोः स्फुरन् ।
स चलत्स्वर्णवल्लीनां नृत्यन् तापिच्छवद्बभौ ॥ ६३ ॥

श्रीकृष्ण नर्तन के समय राधा को ललिता और विशाखा के बीच रखकर उन सबके स्कन्ध पर हाथ रख स्वयं गान करते हुए गाने वाली स्त्रियों की बीच नर्तन करते-करते घूमने लगे ॥ ६१ ॥

बीच-बीच में उनकी गति चक्र की जोरदार गति की तरह होती थी। कभी मन्द, कभी शीघ्रगामी—ऐसी नाना प्रकार की गति श्रीकृष्ण को बड़ी प्रिय लगती थी ॥ ६२ ॥

श्रीकृष्ण दो-दो गोपियों के स्कन्ध पर हाथ रखकर शोभायमान हुए। ऐसी शोभा दिखायी दे रही थी, जैसे चलती हुई सुवर्णवल्लियों के बीच तमाल वृक्ष नर्तन करता दिखायी देता है ॥ ६३ ॥

[कृष्ण नृत्य]

सोऽलातचक्रवत् क्वापि लघुगत्याभ्रमत्तथा ।
हित्वा मां क्वाप्यसौ नागादिति ता मेनिरे यथा ॥ ६४ ॥
स एकां मण्डलीं कृत्वा प्रान्ते सर्वप्रिया गणैः ।
तासां मध्ये स्फुरन् नृत्यन् चक्रं च भ्रमयन् बभौ ॥ ६५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वशक्ति दर्शयञ्चक्राद्युगपद्वा क्रमाच्चलन् ।
अवरुह्य मुहुस्तत्तत् स्थानमारुवारुरोह सः ॥ ६६ ॥

जलती हुई लकड़ी को चक्राकार घुमाने से अग्नि चक्राकार सा दिखता है। उसी प्रकार जलद गति से घूमने के कारण सब गोपियाँ ऐसा समझती थीं कि श्रीकृष्ण सर्वदा उनके पास ही घूम रहे हैं ॥ ६४ ॥

श्रीकृष्ण चक्र के प्रान्त भाग में एक मण्डली बनाकर स्वयं मध्य में विराजमान हुए और नृत्य करने लगे तथा प्रियाओं को चक्राकार घुमाने लगे ॥ ६५ ॥

श्रीकृष्ण अपनी अपूर्व शक्ति से चलते हुए चक्र से उतर कर, फिर उस चलते हुए चक्र पर उस स्थान पर चढ़ने लगे। इसमें वह अपनी द्रुत गति का कौशल दिखा रहे थे ॥ ६६ ॥

गोप्यश्च युगपत् सर्वाः कदाप्येकैकशः क्वचित् ।
अवरुह्यारमारुह्य चक्रुर्मण्डलबन्धनम् ॥ ६७ ॥
विलस्येत्थं हरिस्ताभिश्चक्रभ्रमणनर्तनैः ।
रासलीलाविशेषाय चक्रादवरुरोह सः ॥ ६८ ॥

श्रीकृष्ण की तरह सब गोपियाँ भी एक साथ, या एक-एक कर चक्र से उतरने लगीं और फिर वैसे चढ़कर मण्डलाकार हो गयीं ॥ ६७ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण चक्र पर भ्रमण रूप नर्तन करते हुए अनेक विलास करने के बाद रासलीला के विशेष नर्तन प्रकार दिखाने के लिए उन गोपियों के साथ नीचे उतरे ॥ ६८ ॥

स्वलहरिमृदुहस्तैः संस्कृतं कृष्ण आल्या ।
कुमुदसुरभिवातैर्माजितं स्फारमग्र्यम् ॥
शशिकिरणसुधाभिः सिक्तं लिप्तं स ताभिः ।
पुलिनवर मनङ्गोल्लासरङ्गाख्यमायात् ॥ ६९ ॥

विधाय कृष्णः परितः सुमण्डलीं तस्मिन् मिथोबद्धकरैः प्रियागणैः ।
तदन्तरायं प्रियया बभौ यथा विशाखयेन्दुः परिवेषमध्यगः ॥ ७० ॥

श्रीकृष्ण उतर कर 'अनङ्गोल्लासरम्य' नामक बालुकामय प्रदेश में आये। श्रीकृष्ण की सखी यमुना ने अपने तरङ्गरूपी कोमल हस्तों से वह तट धोकर शुद्ध कर दिया था। वह तट विस्तीर्ण और श्रेष्ठ था। नदी में फूले हुए रात्रिविकासी कमलों की सुगन्ध से पूरित वायु वहाँ बह रही थी। चन्द्र की शुभ्र किरणों के अमृत से वह मानों सिञ्चित, प्रलिप्त था। ऐसे पुलिन प्रदेश में श्रीकृष्ण सखियों के साथ आये ॥ ६९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस पुलिन प्रान्त में श्रीकृष्ण ने अपनी प्रियाओं को परस्पर हस्त में हस्त गुम्फित कर मण्डलाकार खड़ा किया और उस मण्डल के बीच राधा-कृष्ण ऐसे सुशोभित थे, जैसे विशाखा नक्षत्र युक्त चन्द्र शोभायमान होता है ॥ ७० ॥

परिभ्रमत् तल्ललनालिमण्डलम् ।
बभौ यथा कामकुलालभूपतेः ॥
रासादिलीलाख्य घटादिनिर्मितैः ।
सुवर्ण चक्रं हरिदण्डचालितम् ॥ ७१ ॥

इस प्रकार नर्तन करते समय वह घूमने वाली मण्डलाकार पंक्ति ऐसे लग रही थी, जैसे कोई कामरूपी कुम्भकार राजा रासलीला रूपी घड़ा बना रहा है। स्त्रीमण्डल ही घड़ा बनाने का सुवर्ण चक्र है, श्रीकृष्ण नीलदण्ड हैं जो चक्र चलाता है। वह (पंक्ति) इस प्रकार प्रतीत होने लगी ॥ ७१ ॥

तन्मण्डलं भाति विलाससागरे ।
रोद्धुं मनोमीनमिहैव किं हरेः ॥
कन्दर्प कैवर्तवर प्रसारितं ।
हैमं महाजालमुरोज तुम्बिकम् ॥ ७२ ॥

परस्परावद्धकर प्रियातते द्वयोद्वयोर्मध्यगतः क्वचित् प्रभुः ।
प्रिया युगांसार्पित दोर्युगोऽस्फुरन् ताभिः स नाना गति नर्तनैर्भ्रमन् ॥ ७३ ॥

विलास रूपी सागर में वह महिलामण्डल ऐसा लगता था जैसे मदन रूपी श्रेष्ठ धीवर ने श्रीकृष्ण के मनोरूपी मत्स्य को पकड़ने के लिए सोने का जाल बिछा दिया हो। महिलाओं के स्तन इसी जाल में लगी हुई तुम्बियाँ हैं ॥ ७२ ॥

परस्पर हस्त में हस्त समर्पित कर प्रियाओं की वह पङ्क्ति घूम रही है। श्रीकृष्ण दो-दो प्रियाओं के बीच में कभी-कभी आ जाते थे। वे अपनी प्रिया के दोनों स्कन्धों पर दोनों हाथ रखकर उन स्त्रियों के साथ घूमते हुए नाना गतियों में नर्तन-कला दिखाने लगे ॥ ७३ ॥

भुजशिरसि विराजद्दोर्युगं स्वप्रियाल्याः ।
प्रचलदजयमेतन्मण्डलं कृष्णमूर्त्तेः ॥
जलदशकलजालं मध्यमध्यातिराजात् ।
स्थिरतडिदुपगूढं संभ्रमच्चक्रवातैः ॥ ७४ ॥

भ्रमण के समय श्रीकृष्ण के स्कन्ध पर उनकी प्रिय सखी का हाथ रख कर घूमना ऐसा शोभायमान था, जैसे आकाश में मेघखण्ड हो, उस पर बिजली स्थिर रूप में विराजमान हो और वर्तुलाकार चलनेवाले वायु के झोकों से मेघखण्ड घूमते हों। उस शोभा को भी महिलामण्डल ने जीत लिया ॥ ७४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कदाचिदेक एवायं स्वीयभ्रमण लाघवात् ।
भ्रमन्नलातचक्राभः सर्वासां पार्श्वतोऽस्फुरत् ॥ ७५ ॥

कभी-कभी ऐसा दिखने लगा कि श्रीकृष्ण अपने मण्डलाकार नर्तन के लाघव से एक होते हुए भी अलात चक्र (जलती लकड़ी का चक्र) की तरह सभी स्त्रियों के पार्श्वभाग में एक साथ हैं ॥ ७५ ॥

हरिहरिदयितानां वंशिका कण्ठगानैः ।
मिलितवलयकाञ्चीनूपुराली स्वनौघः ॥
नटनगति विराजत् पादतालानुगामी ।
निजवरमधुरिम्णा व्यानशेऽसौ जगन्ति ॥ ७६ ॥

श्रीकृष्ण और उनकी प्रिय गोपियों की बाँसुरी, कण्ठच गायन, कमर की काञ्ची, पैर के नूपुरों से मिलकर जो मधुर ध्वनि हुई, वह नर्तन के समय चरणों की गति की तरह तालानुकूल होकर अपनी विशिष्ट मधुरिमायुक्त थी, उससे तीनों लोक भर गये ॥ ७६ ॥

अनिबद्धं निवद्धं च द्विधा गीतं च ते जगुः ।
सा रि ग म प ध न्याख्य स्वरानालापपुः पृथक् ॥ ७७ ॥

रासमण्डल में श्रीकृष्ण ने इस नर्तन के समय अनिबद्ध और निबद्ध दोनों प्रकार के गीत गाये । और 'सा रि ग म प ध नि' स्वरपूर्ण आलाप भी अलग-अलग ढंग से किये ॥ ७७ ॥

शुद्धां चाविकृतां जातिं द्विविधां च मुदा जगुः ।
तत्र सप्तविधां शुद्धामेकादशविधां पराम् ॥ ७८ ॥

उस समय उन्होंने शुद्ध और विकृत दोनों जातियों का गान किया । शुद्ध जाति के सात और विकृत जाति के ग्यारह प्रकार गाये गये ॥ ७८ ॥

षड्जमध्यमगान्धारभेदाद् ग्रामांस्त्रिभेदकान् ।
तत्र मर्त्यागोचरं ते गान्धारग्राममाजगुः ॥ ७९ ॥

षड्ज, मध्यम और गान्धार तीनों ग्रामों के तीनों प्रकार गाये गये । उनमें विशेष रूप से मानवों के लिए अगोचर, असाध्य गान्धार ग्राम भी गाया गया ॥ ७९ ॥

श्रुतीः सप्तस्वरगता द्वाविंशतिभिदा जगुः ।
शरीरसंख्यास्तानाश्च मूर्च्छनास्त्वेकविंशति ॥ ८० ॥

सात स्वरों की बाइस श्रुतियाँ उन्होंने गायीं और वायुसंख्यक यानी ४९ तानों तथा इक्कीस मूर्च्छनाओं का गान किया ॥ ८० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चदशप्रकारांश्च गमकांस्तिरिपादिकान् ।
तालादिबहुभेदं च स्थायं रम्यमिमे जगुः ॥ ८१ ॥

इसके बाद उन्होंने नर्तन में पन्द्रह प्रकार के गमकों का गान किया, जिनमें तिरिप पहला है। श्रीकृष्ण और गोपियों ने सुस्थिर रूप से एवं रमणीय भाव से ताल के नाना प्रकारों में गान किया ॥ ८१ ॥

शुद्धसालगभेदेन निबद्धं द्विविधं जगुः ।
शुद्धं संज्ञात्रयं तत्र प्रबन्धो वस्तु रूपकम् ॥ ८२ ॥

उसके बाद शुद्ध और सालग के भेद से निबद्ध के दो प्रकारों का गान किया, इनमें शुद्ध के तीन प्रकारों के नाम हैं प्रबन्ध, वस्तु और रूपक ॥ ८२ ॥

प्रबन्धे स्वरपाठादि भेदान्नाना विधाञ्जगुः ।
रागान्नाना प्रकारांश्च ग्रहांश्च न्याससंयुतान् ॥ ८३ ॥

प्रबन्ध में स्वरपाठादि के नाना प्रकार गाये। नाना रागों का गायन ग्रहस्वर एवं न्यासस्वर के प्रदर्शन के साथ किया ॥ ८३ ॥

सप्तस्वरांस्तु सम्पूर्णान् षट्स्वरान् षाडवाभिधान् ।
पञ्चस्वरानौडवांश्च जगुस्ते तांस्त्रिभेदकान् ॥ ८४ ॥

सप्तस्वरों से युक्त सम्पूर्ण, छः स्वरों से युक्त षाडव, और पञ्च स्वरों से युक्त औडव—ऐसे तीन प्रकार के राग उन्होंने गाये ॥ ८४ ॥

मल्लार कर्नाटक नट्टसाम ।
केदारकामोदक भैरवादीन् ॥
गान्धार देशाग वसन्तकांश्च ।
रागानगायन् सहमालवास्ते ॥ ८५ ॥

मल्लार, कर्नाट, नट्ट, साम, केदार, कामोद, भैरव और इसी प्रकार गान्धार, देशाग, वसन्त और मालव राग भी उन्होंने गाये ॥ ८५ ॥

श्रीगुज्जरीं रामक्रिरीञ्च गौरी ।
मासावरीं गोण्डकिरीञ्च तोड़ीम् ॥
वेलावलीं मण्डल गुज्जरीश्च ।
वराटिकां देशवराटिकाञ्च ॥ ८६ ॥
मागधीं कौशिकीं पालीं ललितां पठमञ्जरीम् ।
सुभगां सिन्धुड़ा मेला रागिणीस्ताः क्रमाज्जगुः ॥ ८७ ॥

युग्मकम् ।

श्रीगुज्जरी रामकेरी, गौरी, आशावरी, गोण्डकिरी, तोड़ी, वेलावली, मण्डल-गुज्जरी, वराटिका, देशवराटिका, वैसे ही मागधी, कौशिकी, पाली, ललिता,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पठमञ्जरी, सुभगा, सिन्धुड़ा, मेला आदि रागिणियों का उन्होंने क्रम से गान किया ॥ ८६–८७ ॥

—वाद्य—

घनानद्धततानान्ताः सुषिराणां च भेदकान् ।
वृन्दयोपहृतांस्तांश्च क्रमेणावादयन् मुहुः ॥ ८८ ॥

घन, आनद्ध, तत और सुषिर चारों प्रकारों के जो सब वाद्य वृन्दा लायी, उन्हें उन्होंने क्रम से बजाये ॥ ८८ ॥

मुरजं डमरुं डम्फम् मड्डुं च ममकादिकम् ।
मुरलीं पाविकां वंशीं मंदिरां करतालिकाम् ॥ ८९ ॥
विपञ्चीं महतीं वीणां कच्छपीं करीनासिकाम् ।
स्वरमण्डलिकां रुद्रवीणाञ्चैता अवादयन् ॥ ९० ॥

मुरज, डमरु, डम्फ (डफ), मण्डु, ममक, मुरली, पाविका, वंशी, मन्दिरा, करताल, वैसे ही विपञ्ची, महती, वीणा, कच्छपी, करीनासिका, स्वरमण्डल, रुद्रवीणा आदि नाना प्रकार के वाद्य बजाये ॥ ८९–९० ॥

—हस्ताः—

पताकां त्रिपताकाञ्च हंसास्यं कर्तरीमुखम् ।
शुकास्यं मृगशीर्षं च संदंशः खटकामुखम् ॥ ९१ ॥
सूचीमुखं चार्धचन्द्रं पद्मकोषाहितुण्डिकम् ।
नर्तने दर्शयामासुस्ता इत्यादिक हस्तकान् ॥ ९२ ॥

पताका, त्रिपताका, हंसमुख, कर्तरीमुख, शुकास्य, मृगशीर्ष, संदंश, खटकामुख, सूचीमुख, अर्धचन्द्र, पद्मकोष, अहितुण्डिक आदि हस्तमुद्राओं को उन्होंने नर्तन में दिखाया ॥ ९१–९२ ॥

दधुस्तालान् बहुविधान् कांश्चित्तु ध्रुवलक्षणान् ।
मण्डलक्षणकांश्चान्यान् कांश्चित्तत्तद्विलक्षणान् ॥ ९३ ॥
अतीतानागत समैर्ग्रहैश्च त्रिविधैर्युतान् ।
समागोपुच्छिकास्रोतोवहादि यतिभिर्युतान् ॥ ९४ ॥

गोपाङ्गनाओं ने ध्रुव, मण्डक और अन्य प्रकार के विविध तालों का प्रदर्शन किया। अतीत, अनागत और सम ऐसें तीन प्रकार के ग्रह उनमें थे। इसी प्रकार समा, गोपुच्छिक, स्रोतोवहा आदि विविध यति प्राणों से युक्त गान किया ॥ ९३–९४ ॥

लयैश्च त्रिविधैर्युक्तान् द्रुतमध्यविलम्बितैः ।
निःशब्दशब्दयुक्तेन द्विधा धरण संयुतान् ॥ ९५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्धमानाभिधस्त्वेको हीयमानाभिधः परः ।
इत्यावर्तद्वयाढ्येन मानेन च समन्वितान् ॥ ९६ ॥

द्रुत, मध्य, विलम्बित ऐसे तीन लयों से युक्त, निःशब्द और सशब्द ऐसे दो प्रकार के धरण (तालधरण क्रिया) से युक्त गान किया ॥ ९५ ॥

वर्धमान और हीयमान दो आवर्त हैं, उन्होंने इन दोनों मानों से युक्त गान किया। (वर्धमान बढ़ जाने के समान है अर्थात् प्रथम ताल से वर्धित कर युगल पर शेष। हीयमान में सम ग्रह के पूर्व ही शेष करना है, हीय का अर्थ है कम होंना।) ॥ ९६ ॥

चञ्चत्पुटं चाचपुटं रूपकं सिंहनन्दनम् ।
गजलीलामेकतालं निःसारीमादितालकम् ॥ ९७ ॥
अड्डकं प्रतिमण्ठं च झम्पश्च त्रिपुटं यतिम् ।
नलकूबरमुद्घट्टं कुट्टकं कोकिलारवम् ॥ ९८ ॥
डपाट्टं दर्पणं राजकोलाहल शचीप्रियौ ।
रङ्गविद्याधरं वादकानुकूलूक कङ्कणैः ॥ ९९ ॥
श्रीरङ्गाख्यं च कन्दर्पं षट्पितापुत्रकं तथा ।
पार्वतीलोचनं राजचूडामणि जयप्रियौ ॥ १०० ॥
रतिलीलं त्रिभङ्गीं च चञ्चरद्वीरविक्रमम् ।
इत्यादि नर्तने तालात् दधुः कृष्णस्य च प्रियाः ॥ १०१ ॥

चञ्चत्पुट, चाचपुट, रूपक, सिंहनन्दन, गजलील, एकताल, निःसारी, आदिताल, अड्डक, प्रतिमण्ठ, झम्प, त्रिपुट, यति, नलकूबर, उद्घट्ट, कुट्टक, कोकिलारव, डपाट्ट, दर्पण, राजकोलाहल, शचीप्रिय, रंगविद्याधर, वादक, अनुकूल, कङ्कण, श्रीरङ्ग, कन्दर्प, षट्पितापुत्रक, पार्वतीलोचन राजचूड़ामणि, जयप्रिय, रतिलील, त्रिभङ्गी, चञ्चरत्, वीरविक्रम आदि ताल श्रीकृष्ण और उनकी प्रियाओं ने नर्तन में प्रदर्शित किये ॥ ९७–१०१ ॥

श्रीचैतन्यपदारविन्दमधुपश्रीरूपसेवाफले ।
दिष्टे श्रीरघुनाथदासकृतिना श्रीजीवसङ्गोद्गते ॥
काव्ये श्रीरघुनाथभट्टवरजे गोविन्दलीलामृते ।
सर्गो रासविलासवर्णनमनु द्वाविंशकोऽयं गतः ॥ १०२ ॥

श्री चैतन्यदेव के चरणकमल की सेवा में भ्रमर की तरह एकाग्र श्रीरूपजी की सेवा के फलस्वरूप उनकी आज्ञा से बना, श्रीरघुनाथदास की कृति रूप यह श्रीगोविन्दलीलामृत है, जिसकी रचना जीवसङ्गति के उपकार से हुई है। उसका 'रासलीलाविलास' नामक यह बाईसवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ॥ १०२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ त्रयोविंशः सर्गः

अथ प्रबन्धगानं स नानातालैः पृथग्विधम्।
कर्तुमारभतैताभिर्विदग्धाभिः सनर्तनम् ॥ १ ॥

श्रीराधया नृत्यति कृष्णचन्द्रे।
गायन्त्य आसन् ललितादयस्तदा ॥
चित्रादयोऽन्याः किल तालधारिका।
वृन्दादयः सभ्यतया व्यवस्थिताः ॥ २ ॥

—श्रीकृष्ण नृत्य—

बाद में श्रीकृष्ण ने इन गोपिकाओं के साथ अलग-अलग प्रकार से नाना तालों का प्रयोग कर नर्तन के साथ भिन्नप्रकार के प्रबन्धों का गान शुरू किया ॥ १ ॥

—उस प्रबन्ध गान का वर्णन करते हैं।—

श्रीकृष्णचन्द्र जब श्री राधिका के साथ नृत्य करते थे, तब ललितादि सखियाँ गायन करती थीं और चित्रादि दासियाँ ताल रखती थीं तथा वृन्दा आदि सभ्य बन कर बैठी थीं। (सभ्य वे कहलाते हैं जो गीत, वाद्य एवं नर्तन आदि विषयों में अच्छा-बुरा, शुद्ध-अशुद्ध का विवेचन करते हैं।) ॥ २ ॥

कृष्णे नृत्यत्येकले राधिकाद्याः।
गायन्ति स्माश्चर्यतालै दुरूहैः ॥
तस्मिन् सभ्ये राधिकाद्याः क्रमेणा-
श्चर्यं नृत्यं साङ्गहार व्यधुस्ता ॥ ३ ॥

जब श्रीकृष्ण अकेले नृत्य करते थे, तब श्रीराधा आदि कठिन दुरूह तालों में गाती थीं ।जब राधिका आदि अङ्गहारों से विभूषित होकर अंग-विक्षेपों के साथ क्रम से आश्चर्य नृत्य करतीं, तब श्रीकृष्ण सभ्य होते थे ।। ३ ।।

रङ्गे क्रमाच्छ्रेणितया स्थितानाम्।
अंतः पटत्वं नटतां गतानाम् ॥
वीणादि वाद्यावलिधारिकाणाम्।
नानाप्रबन्धादिकं गायिकानाम् ॥ ४ ॥

ततघनसुषिराढ्यानद्ध कण्ठस्वरोघे।
मृदु विविधगतित्वेऽप्यैक्यमाप्तेऽङ्गनानाम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तदनुगपदतालैर्भ्रूकराङ्गाक्षिचालैः ।
ननृतुरिह सकृष्णाः ताः प्रविश्य क्रमेण ॥ ५ ॥
(युग्मकम् ।)

रङ्गस्थल पर पङ्क्ति में खड़े होकर नाचने वाले श्रीकृष्ण आदि का मानों अन्तःपट हो गया । वीणादि वाद्य बजाने वाली एवं नाना प्रबन्ध गाने वाली स्त्रियों के स्वर और तत, घन, सुषिर एवं आनद्ध वाद्यों और उन स्त्रियों के कण्ठ से निकलने वाले मृदु स्वर-समूह में नाना अंगों और विविध गतियों के बावजूद ऐक्य हो गया । गति स्वर से समन्वित थी और स्वर गति से । उसकी अनुगति से पदगति, वाद्यगति, ताल सब का समन्वय कायम रखते हुए श्रीराधा आदि स्त्रियों ने रङ्गस्थल में प्रवेश किया । श्रीकृष्ण, राधा, ललिता आदि क्रम से भ्रुकुटी, हाथ, अंग, नेत्र आदि के अभिनय के साथ नाचने लगे ॥ ४-५ ॥

अब श्रीकृष्णादि के नर्तन का पृथक्-पृथक् वर्णन करते हैं ।

—श्रीकृष्णः—

कृष्णः श्रीमान् मुहुरिह समागत्य तासां स मध्यात् ।
नाना तालक्रमवशतया चालयन् श्रीपदाब्जे ॥
धुन्वन् पाणी नटति निगदन्नित्थमानन्दयंस्ताः ।
तत्ता तत्थे दृगिति दृगिथै, दृक्तथै दृग् तथैथा ॥ ६ ॥

रङ्गस्थल पर क्रम से कतार में खड़ी सखियों के बीच में से मध्यभाग में आकर श्रीकृष्ण नाना प्रकार के ताल अपने श्रीचरणकमलों और करकमलों के संचालन से प्रदर्शित करते हुए, नाचते हुए तथा तत्ता, तत्थै, दृगिति, दृगिथै, दृक्तथै, दृग्, तथैथा पाटाक्षर बोलते हुए गोपियों को आनन्दित करने लगे ॥६॥

थो दिक् दां दां किट किट कणझें थोक्कु थो दिक्कु आरे ।
झेन्द्रां झेन्द्रां किटिकिटिकिटिधां झक्कु झें झेक्कु झें झेंम् ॥
थो दिक् दां दां दृमि दृमि दृमि धां काङ्कुझें झेंकु झें द्राम् ।
आगत्यैवं नटति (पठति) स हरिश्चारुपाठप्रबन्धम् ॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण आकर थो, दिक् दां दां किट-किट कणझें थोक्कु थो दिक्कु आरे झेन्द्रां झेन्द्रां किटि किटि किटिधां झक्कु झें झेक्कु झें झेंम् थो दिक् दां दां दृमि दृमि दृमि धां काङ्कुझें झेंकु झें द्राम् पाठप्रबन्ध का सुन्दर ढंग से पाठ करते हैं और नाचते हैं ॥ ७ ॥

—राधा—

कूजत् काञ्चीकटक विरणन्नूपुरध्वानरम्यम् ।
पाणिद्वन्द्वं मुहुरिह नदत् कङ्कणं चालयन्ती ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा कृष्णद्युतिघनचये चञ्चलेव स्फुरन्ती।
नृत्यन्तीत्थं गदति तथथै थै त थै थै तथैथा ॥ ८ ॥

श्रीराधा भी श्रीकृष्ण के नीलकान्ति रूपी मेघ पर चञ्चलता से चमकने वाली बिजली की तरह कूजन करनेवाली काञ्ची और कंकणों के शब्दों और अनुरणन करनेवाले नूपुरों की मञ्जुल ध्वनि के साथ दोनों करकमलों का संचालन करते हुए, तथ थै थैत थै थै तथैंथा बोलकर रङ्गस्थल पर नर्तन करती है ॥ ८ ॥

धां धां दृक् दृक् चङ चङ णिङां णं निङां णं निङां नाम् ।
तत्तुक् तुं तुं गुडु गुडुधां द्रां गुडुद्रां गुडुद्राम् ॥
घेक् घेक् धो धो किरिटि किरिटि द्रां द्रां द्रिमिद्रां द्रिमिद्राम् ।
आगत्यैवं मुहुरिह मुदा श्रीमदीशा ननर्त ॥ ९ ॥

अतिशोभाशालिनी ईशनशक्ति विशिष्टा ईश्वरी राधा रङ्गस्थल में आकर धां धां दृक् दृक् चङ चङ णिङां णं निङां णं निङां नाम् तत्तुक् तुं तुं गुडु गुडुधां द्रां गुडुद्रां गुडुद्राम् घेक् घेक् धो धो किरिटि किरिटि द्रां द्रां द्रिमिद्रां द्रिमिद्राम् बोलती हुई बड़े आनन्द से बार-बार नाचने लगीं ॥ ९ ॥

—ललिता—

झं झं कुर्वत् कनकवलयं धुन्वती पाणिपद्मे ।
तासां मध्यात् सपदि ललिताप्यागता कृष्णकान्त्या ॥
श्यामे रङ्गे तडिदिव घने नृत्यतीत्थं वदन्ती ।
थै थै थो थो तिगड तिगड थो तत्तथै थो तथैता ॥ १० ॥

उसके बाद श्रीकृष्ण की नीलकान्ति से नीलवर्णमय रङ्गस्थल में श्रेणीबद्ध खड़ी सखियों के बीच में से मेघमण्डल में अकस्मात् बिजली चमकने के समान आकर व्रजसुन्दरी ललिता करकमल के वलयों की झंकार करती हुई तथा करकमलों को हिलाती हुई और थै थै थो थो तिगड तिगड थो तत्तथै थो तथैता बोल बोलती हुई नृत्य करने लगी ॥ १० ॥

—विशाखा—

दृमि दृमि दृमि धो धो धो मृदङ्गादिनादैः ।
कण कण कण वीणा शब्दमिश्रैर्विशाखा ॥
नटति झणण झञ्झत् कार्यलङ्कारजाला ।
दृगिति दृगिति दृक् थै थो तथो थो ब्रुवाणा ॥ ११ ॥

मृदङ्ग के शब्द दृमि दृमि दृमि धो धो धो और वीणा के कण कण कण शब्द जब मिल गये, एक रूप हो गये या दोनों में समन्वय स्थापित हो गया, तब विशाखा रङ्गस्थल के मध्य में आकर नाचने लगी। उस समय उसके सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलङ्कार झणण झञ्झत् आदि ध्वनियाँ करने लगे। वह मुख से दृगिति दृगिति दृक् थै थो थों तथो थो ऐसे पाटाक्षर या प्रबंध गा रही थी ॥ ११ ॥

— कोई व्रजसुन्दरी —

काचित् स्वनन्नूपुर किङ्किणीका।
मुहुः क्वणत् कङ्कण पाणियुग्मम् ॥
विधुन्वतीत्थे नटतीरयन्ती।
थैया तथैया तथ थै तथैया ॥ १२ ॥

कोई एक व्रजसुन्दरी, जिसके पैरों के नूपुर की किङ्किणियाँ बार-बार मञ्जुल ध्वनि कर रही हैं और दोनों करों के कङ्कण किण-किण ध्वनि कर रहे हैं, जो अपने पाणिपद्मों को साभिनय संचालित कर रही है और मुंह से थैया तथैया तथथै तथैया पाठप्रबन्ध गा रही है, नर्तन करने लगी ॥ १२ ॥

—दूसरी एक—

पादन्यासैः श्रीकरद्वन्द्वचालैः।
नृत्यत्यन्या नूपुरध्वान मिश्रैः ॥
तालोत्थानायेत्थमुच्चारयन्ती।
थै थै थै थै, थै त थै थै, तथैथाः ॥ १३ ॥

दूसरी एक व्रजसुन्दरी भूमि पर ऐसा नर्तन कर रही थी कि उसके पदन्यास और करद्वय संचालन उसके नूपुरों की मधुर ध्वनि के साथ एकरूप हो गये। ताल के स्वरूप को व्यक्त करने के लिए वह मुंह से थै थै थै थै, थै त थै थै, तथैथा पाटाक्षर बोलती जाती थी ॥ १३ ॥

— दूसरी एक —

रङ्गं प्राप्ता तदनु तथान्या नृत्यन्ती सा लपति तदेत्थम्।
थैया थैया तथ तथ थैया थैया थैया तिगड तथैया ॥ १४ ॥

दूसरी एक ललना उसके बाद रङ्गस्थल के मध्यभाग में नर्तन करते समय थैया थैया तथ तथ थैया थैया थैया तिगड तथैया बोल बोलती थी ॥ १४ ॥

[इस प्रकार सखियाँ नृत्य करती थीं, उस समय पुनः श्रीकृष्ण नृत्य करने लगे।]

आ आ ई आति आ आ, ति अ इ अति अ आ, आति आआति आ आ।
आ आ ज्योत्स्नोज्ज्वलाङ्गं नटदिव पुलिनं, राधिके पश्य आरे ॥
आ आ आ आति आ आ, नटति च विपिनं, सन्दवातेरितं आ।
आ आ आ एति कृष्णः पुनरिह निगदन् सालसाङ्गं ननर्त ॥ १५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'आ आ ई'—इत्यादि स्वर गाते हुए श्रीकृष्ण उल्लसित होकर फिर नृत्य करने लगे। उन्होंने राधिका से कहा, हे राधे! देखो, यमुना का यह पुलिन प्रदेश भी, जिसका सम्पूर्ण भाग चन्द्र के प्रकाश से उज्ज्वल हो रहा है, 'आ आ ई आ ति आ आ' आदि का उच्चारण करता हुआ मानों नर्तन कर रहा है, नृत्य का एक प्रकार विशेष दिखा रहा है और यह अरण्य भी वायु के झोंकों से प्रेरित होकर 'आ आ ई आ ति' आदि स्वर-पाट गाकर मानों नृत्य का एक विशेष प्रकार प्रदर्शित कर रहा है। श्रीकृष्ण स्वयं 'आ आ ई आति' आदि का उच्चारण करते हुए प्रदीप्त अंगों से नर्तन कर रहे हैं, यानी उनका सर्वाङ्ग समुज्ज्वलित हो रहा है। (लस धातु का अर्थ दीप्ति है, गुणिवाचक शब्द से गुण का बोध होता है, अतः अंगों के साथ दीप्ति भी मानों नाच रही है ॥ १५ ॥

— पुनः राधा का नृत्य —

आ इ अ आ इ अति प्रियहास- ।
श्चन्द्रति कुन्दति हंसति आरे ॥
क्षीरति हीरति हारति आरे ।
आ इ अ आ इ अ नृत्यति राधा ॥ १६ ॥

उसके बाद श्रीराधा भी श्रीकृष्ण से कहती है, हे परम प्रियतम! तुम्हारा हास्य चन्द्र की तरह बर्ताव कर रहा है, अर्थात् चन्द्र जैसा आनन्द देता है और कुन्द के फूल की तरह विकसित हो रहा है, अथवा कुन्द शब्द से कुन्दलता अर्थ लिया जाय तो कुन्दलता जिस प्रकार अपनी कलिकाओं को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार तुम्हारा हास्य तुम्हारी कुन्दलिका की तरह समुज्ज्वल दाँतों को प्रकाशवान कर रहा है। तुम्हारा हास्य हंस की तरह सबका मनोरञ्जन कर रहा है, दूध की तरह सबको मधुर लग रहा है, हीरे की तरह चमक रहा है; जिन्हें तुम्हारा सान्निध्य प्राप्त है, उन व्रजाङ्गनाओं को सुशोभित कर रहा है। जिनका तुमसे वियोग हुआ है, उन सुन्दरियों को (जीवन) विष की तरह लग रहा है (हीरा खाने से विषवत् प्राणहारक होता है।) तुम्हारा हास्य हार की तरह है (हार का अर्थ मौक्तिकसर या युद्ध है), वह हार की तरह पुनः-पुनः चमक रहा है और तुम्हारी संगति में रमे हुए जो हम विपक्ष (व्रजसुन्दरियाँ) हैं, उनके मान या अभिमान को तोड़ता है, और दूसरी स्त्रियों के पातिव्रत्य की हानि करता है, अर्थात् वह युद्ध की तरह है। (इसमें शुक्लचन्द्र की उपमा दी गयी है, उससे धवल हास्य और क्षत्रियों के यश की तरह उज्ज्वल है।) इस प्रकार कह कर राधा भी 'आ इ अ आ इ अ' गाती हुई नाचती है, नृत्य का विशेष प्रकार दिखाती है ॥ १६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ता धिक् ता धिक् धिगिति निनादम् ।
कुर्वन् रासे वरमुरजोऽयम् ॥
लास्यैरासामतिशयतुष्टो ।
निन्दत्यन्याः सुरवनिताः किम् ॥ १७ ॥

ग्रन्थकार का कहना है कि श्रीव्रजाङ्गनाओं का नृत्यकौशल अन्य नृत्यों से कोटिगुणित अधिक है।

यह मुरज (आनद्ध चर्मवाद्य) उत्तम है। अचेतन होते हुए भी वह सारा-सार विचार करने में चतुर है, गोपियों के इस रास को देखकर सन्तुष्ट होता है। ता धिक्; ता धिक् ऐसे शब्द करता हुआ वह मानो देवस्त्रियाँ उर्वशी आदि और गन्धर्व किन्नर स्त्रियों-सब-व्रजाङ्गनाओं के लास्य-कौशल के सामने लेशमात्र भी नहीं हैं; इसलिए उनका धिक्कार है—ऐसी निन्दा मानों इतर स्त्रियों की कर रहा है ॥ १७ ॥

वैणिक्यो वैणविकाश्च गायन्त्यस्तालधारिकाः ।
मौरजिक्यश्च नृत्यन्ति नर्तकीभिः समं मुदा ॥ १८ ॥

वीणा बजाने वाली, वेणु बजाने वाली, गायन करनेवाली, ताल प्रदर्शन करने वाली और मुरज बजाने वाली स्त्रियाँ भी नृत्य करने वाली स्त्रियों के साथ अपने-अपने वाद्य बजाते हुए नाचने लगीं ॥ १८ ॥

आविष्टानां गाननृत्येऽङ्गनानाम् ।
तत्तद् गत्यात्युच्छ्वसद् गाढबन्धम् ।
नीवी वेणी कञ्चुकादि स्वयं तद् ।
कृष्णः क्षिप्रं नृत्यबन्धे (मध्ये) बबन्ध ॥ १९ ॥

गायन-वादन सहित नृत्य में मग्न गोपियों की वस्त्र-नीवी (कटिवस्त्र-बन्ध) वेणी, कञ्चुकी आदि उस समय छूट जाती जब वे नृत्य-गीत-वाद्य के अनुरूप हस्तपादादि गति की रचना करते समय जोर से उछलती थीं। उस समय श्रीकृष्ण नाचते हुए उसी समय उन ग्रन्थियों को पुनः बाँध देते थे। (नीवी इत्यादि का सामान्यतया नपुंसक प्रयोग किया गया है उच्छ्वसद्गाढबन्धं' कञ्चुकादि) ॥ १९ ॥

ते नानाशब्दबन्धेन ससृजुर्गायिनी जनाः ।
ष ऋ गा म प धै न्याख्यैः स्वरै रागान्नवान् नवान् ॥२०॥

गानमग्न वे व्रजसुन्दरियाँ नाना प्रकार के शब्दों की रचना कर, षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद (सा, रे, ग, म, प, ध, नि) सप्त स्वरों से अपूर्व, नये या स्तुतिपात्र उत्तम रागों के स्वरूप को गाकर प्रकाशित करने लगीं ॥ २० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरानालापयन् शुद्धान् संकीर्णांश्च सहस्रधा।
गीतं च मार्गदेशीयभेदात्ता बहुधा जगुः॥ २१॥

वे गोपियाँ शुद्ध और संकीर्ण भेद से हजारों प्रकार के स्वरालाप प्रकट करने लगीं और मार्ग एवं देशी भेद से गीत गाने लगीं॥ २१॥

शुद्ध, सालग (छायालग) और संकीर्ण तथा मार्ग और देशी भेद के लक्षण संगीत दर्पण' में इस प्रकार दिये गये हैं।

(१) शुद्ध राग वे हैं जो पूर्णतया शास्त्रोक्त रीति से गाये जायँ एवं अन्य राग का मिश्रण न हो। (२) सालग या छायालग राग वे हैं जिनमें दो रागों का मिश्रण हो। (३) संकीर्ण राग वे हैं जिनमें शुद्ध और सालग रागों का मिश्रण हो। गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों को मिलाकर संगीत कहा जाता है। संगीत मार्ग और देशी भेद दो प्रकार का हैं। मार्ग संगीत का नाम 'गान्धर्व' भी है, जिसके स्रष्टा ब्रह्मा भरत बताये जाते हैं। देशी पद्धति से जो लोगों का विनोदन करता है और जो देश-देश में भिन्न-भिन्न रूप का होता है वह देशी संगीत है। इस सम्बन्ध में संगीत-दर्पण देखिये।

प्रावृषणभ इव सघनं सूचीमूलमिव ससुषिरं गानम्।
गगनमिवातिततं तद् रत्नमिव बभौ सदानद्धम्॥ २२॥

वहाँ नृत्यस्थल में गोपियों का जो गायन हुआ, वह अति सुन्दर था, उसका वर्णन करते हैं। गोपियों का नर्तन गान वर्षाकालीन आकाश की तरह था, वर्षाकालीन आकाश सघन यानी कांस्यतालादि घनवाद्य युक्त था। सूचीमूल यानी सुई के मूल जैसा स-सुषिर अर्थात् छिद्रयुक्त अर्थात् गान ससुषिर यानी छिद्रयुक्त वाद्य बाँसुरी की ध्वनि से युक्त मधुर था। गगन की तरह अतितत यानी गगन जैसा विस्तृत होता है, वैसा यह गान अतितत था, यानी वीणादि ततवाद्यों से युक्त था। इसी प्रकार यह गान रत्न की तरह था; रत्न जैसे सद्धातु में, सुवर्ण में बद्ध रहता है, ऐसा ही सत् यानी अच्छी तरह से आनद्ध वाद्यों से युक्त था। (नह् धातु का अर्थ बाँधना है, नद्‌वृ उसका रूप है। वीणादि वाद्यों को तत कहते हैं। मुरजादि चर्मवाद्यों को आनद्ध, वंशी आदि वाद्यों को सुषिर तथा कांस्य से बने तालादि वाद्यों को घनवाद्य कहते हैं। ऐसा अमरकोश में कहा गया है।)॥ २२॥

योऽयं महान् ध्वनिरभून्नटनर्तकीनाम्।
मञ्जीर सद्वलयकङ्कण किङ्किणीजः।
पत्ताल संपदनुगामितया चतुर्षु
वाद्येषु तेषु किल पञ्चमतां स लेभे॥ २३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नट और नर्तकियों अर्थात् श्रीकृष्ण और व्रजसुन्दरियों के मञ्जीरयुक्त वलयों, किङ्किणीयुक्त नूपुरों से जो बड़ी ध्वनि उत्पन्न हुई, पदनिक्षेप का ताल उसका पोषक था अतः पदताल के अनुसरण से वह चारों प्रकारों के वाद्यों में पाँचवाँ हो गया। 'तत्तालसंपदनुगामितया'–ऐसा पाठान्तर है, उस पाठ में उन चारों वाद्यों की तालसंपद का अनुसरण करने से चारों में पाँचवाँ हुआ। इस श्लोक में "योऽयं" करके अंगुलिनिर्देश किया गया है, वह वर्णनावेश में मानों साक्षात् सामने अनुभव में आ रहा है, ऐसा प्रतीत होता है ॥ २३ ॥

आस्ये गीतिस्तदभिनयनं श्रीकरे श्रीपदाब्जे।
तालो, ग्रीवा कटिषु धुवनं नेत्रयोर्दोलनं च ॥
स व्यास व्यागमन गमनं तारकायां कटाक्षः।
कृष्णास्याब्जे मनसिज सुखं बल्लवीनां तदासीत् ॥ २४ ॥

उस नर्तन के समय व्रजाङ्गनाओं के मुख में गीत था, उसका अभिनय उनके सुन्दर करकमलों (हस्तकों) में था, उनके चरणकमलों में ताल था, ग्रीवा और कमर में कम्पन था, नेत्रों में आन्दोलन था और श्रीकृष्ण के मुखकमल पर कटाक्ष। इन सब क्रियाओं से उन सब को मदनसुख का अनुभव हो रहा था। (यहाँ 'आसीत्' के प्रयोग का अर्थ है कि ये सब क्रियाएँ स्वयंसिद्ध रूप से हो रही थीं, अतः इनके लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं थी। ये सब क्रियाएँ स्वभावतः हो रही थीं ॥ २४ ॥

जातयः श्रुतयो याश्च मूर्च्छना गमकाश्च ये।
नोच्चरन्ति विना वीणां कण्ठे तांस्तांश्च ता जगुः ॥ २५ ॥

जाति, श्रुति, मूर्च्छना और गमक- इन सबका उच्चारण गोपियाँ वीणा के बिना नहीं करती थीं, इनका वे कण्ठ में ही गान करती थीं (यहाँ ऐसा भी हो सकता है––जाति आदि का उच्चारण वे बाहर नहीं करती थीं, किन्तु वीणा के बिना वे सिर्फ कण्ठ में ही उन्हें व्यक्त करती थीं––'तथाहि गमकाश्च ये तान् नोच्चरन्ति, किन्तु कण्ठ एव, वीणां विना, तांस्तान् जगुः' ॥ २५ ॥

असंमिश्रा जातीः श्रुतिगमक रम्याः स्वरतले।
समुन्निन्ये यैका मुदित हरिणा साध्विति गिरा ॥
पुपूजे तेनेयं तदपि च तदायासमनयत्।
ध्रुवाभोगं सास्मादलभततरां मानमधिकम् ॥ २६ ॥

एक व्रजसुन्दरी असम्मिश्र जातियाँ स्वर, श्रुति और गमक के सहयोग से रमणीय कर उच्चस्वर में गाने लगी। उससे आनन्दित होकर श्रीकृष्ण ने साधु-साधु कहकर उसका स्वागत किया। उस समय गोपी ने जातियों को पहले ध्रुवा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और बाद में आभोग में परिणत किया, तो श्रीकृष्ण ने उसके प्रति और अधिक सम्मान प्रदर्शित किया। (उद्ग्राहादि चार अवयव माने गये हैं। प्रथम अवयव हैं उद्ग्राह। जिस अवयव से गीत ग्रहण होता है या आरम्भ होता है वह उद्ग्राह है। दूसरा अवयव है मेलापक। उद्ग्राह और ध्रुवक क मेल करानेवाला अवयव मेलापक है। तीसरा अवयव है ध्रुव। जो गान में बार-बार आता है वह ध्रुव है। अन्तिम अथवा चौथा अवयव आभोग है, जो गीत की पूर्णता सूचित करता है)॥ २६॥

छालिक्यनृत्ये राधाया देयमन्यदपश्यता।
तुष्टेनात्मार्पितस्तस्यै कृष्णनालिङ्गनच्छलान्॥ २७॥

छालिक्य नृत्य में श्रीराधा का नैपुण्य देखकर श्रीकृष्ण सन्तुष्ट हुए, किन्तु राधा को पारितोषिक रूप देने योग्य कोई वस्तु न देखकर उन्होंने श्रीराधा को आलिङ्गन के मिष, मानो आत्मा का अर्पण किया॥ २७॥

कृष्णे कान्तां नटयति मुदा क्वापि वंशी प्रगानैः।
नर्मोन्नीतं स्खलनमिह सा तस्य दृष्टया दिशन्ती॥
तालं तस्य स्खलितमपि संभालयन्त्यात्मनो द्राक्।
तं चाप्येषां नटयति तथा क्वापि वीणादि गानैः॥२८॥

श्रीकृष्ण नृत्यस्थल में किसी समय जब बाँसुरी के गाने के साथ नाचते थे, उस समय श्रीकृष्ण के गाने में स्खलन, भूल की सूचना श्रीराधा बड़े कौतुक से अपनी दृष्टि के माध्यम से देती थी और शीघ्र ही अपनी वीणा के गायन से उन्हें सम्भालती थीं। गलतियों को सुधारती थीं और ताल सम्भालकर उसे सुशोभित करती थीं। श्रीराधा भी अपनी वीणादि गानों से श्रीकृष्ण को नचाती थीं॥२८॥

कृष्णेन राधात्र तया समं हरिः।
यथा 'ननर्तात्र जगाववादयत्॥
साहाय्यकोत्कापि तयोः सखीतति।
र्नालं तथा सा नृति गानवादने॥ २९॥

उस रङ्गस्थल में श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधा और श्रीराधा के साथ श्रीकृष्ण जिस प्रकार नाचते, गाते और बजाते थे, उसी प्रकार सखियाँ भी अतिशय उत्सुकता से सहायता करना चाहती थीं। किन्तु नर्तन, गायन और वादन में वे सब उस प्रकार समर्थ, सक्षम नहीं हो पाती थीं॥ २९॥

तालावसाने हरिरात्मपाणिन्यासं प्रियावक्षसि संविधते।
प्रियापि सव्येन करेण तुष्टा निरस्यतीशस्य करं रुषेव॥३०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताल के अवसान पर श्रीकृष्ण अपना हाथ प्रियतमा राधा के वक्षःस्थल पर रखते थे और राधा उससे सन्तुष्ट होती थी। फिर भी ऐसा दिखाकर कि मानों क्रोध आया है, वह अपने बायें हाथ से श्रीकृष्ण के हाथ को हटा देती है ॥३०॥

जानुभ्यां क्षितिमालम्ब्य प्रसार्यैका ततौ भुजौ।
जुघूर्णे काञ्चनी वेगक्षिप्तेव स्मरचक्रिका ॥३१॥

एक गोपी जानुओं को जमीन पर टिका कर बैठी और दो हाथ दोनों ओर पसार कर घूमने, भ्रमण करने लगी। उस समय ऐसा लगने लगा मानों जोर से घुमाई हुई सुवर्ण की मदनचक्रिका हो ॥ ३१ ॥

लीलोत्सर्पापसर्पाभ्यां दोः प्रसारनिकुञ्चनैः।
अङ्गान्यङ्गैः स्पृशन्त्यन्या नृतिं चक्रेऽन्य दुष्कराम् ॥३२॥

लीला से ऊपर-नीचे-आगे अपसर्पण करती हुई दूसरी एक गोपी अंगों से अंगों को स्पर्श करती हुई अति कठिन, दुष्कर नृत्य करने लगी ॥ ३२ ॥

स्पृष्ट्वा करैकेन भुवं क्वचित् परा।
देहं परावृत्य मुहुर्मुहुर्दिवि ॥
पतन्त्यनृत्यद्भुवि सा कदाप्यसौ।
विना तदालम्ब्रनमम्बरे परम् ॥३३॥

रङ्गस्थल में एक समय दूसरी एक गोपी एक हाथ से जमीन को स्पर्श कर, आकाश में शरीर को बार-बार घुमाती हुई नाचने लगी। कभी-कभी वह जमीन पर गिरकर नाचती और कभी जमीन का आधार छोड़कर निरालम्ब आकाश में नृत्य करती थी। (गोपियाँ सर्वशक्तिमान होने से उनका आकाश में घूमना आश्चर्य नहीं है। ३६वें में श्लोक में तदनुकूल वर्णन भी है।) ॥ ३३ ॥

ऊर्ध्वे स्थितोत्तानया विभुग्ना।
क्षीणोदरी पार्ष्णिगवेणि रेका ॥
ननर्त पृष्ठातत शिञ्जिनीका।
कृष्टा तनोर्हेम धनुर्लतेव ॥३४॥

एक सुन्दरी, जिसकी पीठ में धनुष की रस्सी की तरह लम्बी वेणी है, जो इतनी कृश है कि पेट पीठ से लगा हो, जिसकी वेणी खींचकर वक्र की हुई मदन के धनुष की लता जैसी है एवं वह उतान होकर पैर की पार्ष्णि से लगी है, ऐसे धनुष की तरह टेढ़ी होकर सुवर्णनिर्मित धनुर्लता की तरह भासने लगी और आकाश में ही नाचने लगी। वह सिर्फ पद पर रहकर उत्तान वक्री भाव से शरीर को धनुषाकार बनाकर नाचने लगी ॥ ३४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मञ्जीरान्तर्गतविवरगान् कापि तालानुरोधात् ।
एकद्वित्रिक्रमवशतया वादयन्तो कलायान् ॥
सर्वान् क्वापि स्थगयति पदौ चाल्यन्त्यत्यपूर्वम् ।
नृत्यन्त्येषा गुणिभिरखिलैः साधुवादैः पुपूजे ॥३५॥

कोई एक गोपी नर्तन के दौरान पदसञ्चालन के समय नूपुरों के अन्दर छिद्रों के बीच वटाणे की शक्ल की जो सुवर्ण मणियाँ थीं, उन्हें ताल की गति के अनुसार पहले एक मणि, फिर दो मणियाँ और तीसरी वार तीन मणियाँ क्रम से बजाती हुई ताल-समाप्ति के समय बराबर समाप्त करती थी। इस प्रकार उसका अपूर्व नर्तन देखकर किसी समय नर्तन करने वाली, सभ्यों, श्रीकृष्ण आदि ने साधु-साधु कहकर उसका सत्कार किया, क्योंकि वे सब दर्शन, श्रीकृष्ण आदि स्वयं गुणी और गुणों का गौरव करने वाले थे ॥ ३५ ॥

गीतं वाद्यं च नृत्यं विधिशिव रचितं यच्च वैकुण्ठलोके ।
यल्लक्ष्मीकान्तलक्ष्मीचयनय रचितं स्वेन यत्तत् प्रणीतम् ॥
अन्यागम्यं गदाभिर्व्रजवरललना नर्तकीभिश्च सृष्टम् ।
रासे कृष्णस्तदेतन्मुहुरिह कुतुकी सर्वमाभिर्व्यतानीम् ॥३६॥

वैकुण्ठ लोक में ब्रह्मा शिव ने भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए अन्य देवताओं के साथ काफी प्रयत्न से जो नर्तन किया वह गीत, वाद्य एवं नृत्य; और लक्ष्मीपति श्रीनारायण ने लक्ष्मी के साथ जिसका शास्त्रानुसार आविष्कार किया और जो सर्वश्रेष्ठ माना गया, वह गीत, वाद्य एवं नृत्य, और सर्वकला निपुण भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस सर्वसंगीत को प्रकाशित किया, जो अन्य किसी से जाना नहीं जा सकता था वह गीत, वाद्य एवं नृत्य तथा व्रजसुन्दरियों ने जिसे प्रकाशित किया था वह गीत, वाद्य एवं नृत्य श्रीकृष्ण द्वारा श्रीराधा और व्रजसुन्दरियों के साथ इस रास में पहले से भी बढ़कर, सव प्रकार से कोटिगुणित कर दिखाया गया, विस्तृत किया गया ॥ ३६ ॥

काश्चित् पश्यति काश्च चुम्बति पराः साकूतमालोकते ।
कासाञ्चिद्दशनच्छदौ पिबति सोऽन्यासां कुचौ कर्षति ॥
वक्षोजे नखरानतर्कितमधात् कासाञ्च नृत्ये भ्रमन् ।
एवं रासमिषेण ताः स रमयन् रेभे रसाब्धौ हरिः ॥३७॥

भगवान् श्रीकृष्ण नर्तन में घूमते समय कल्पना, अभिप्राय न होते हुए कुछ गोपियों को देखते थे, कुछ गोपियों का चुम्बन लेते थे, अन्य कुछ गोपियों की ओर विशिष्ट मनोभाव से देखते थे, कुछ गोपियों के अधरोष्ठ का रसपान करते थे, कुछ गोपियों के स्तन खींचते थे और कुछ गोपियों के स्तनों को नखों से क्षत करते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थे । इस प्रकार रास के निमित्त श्रीराधा प्रभृति गोपियों को रस-सागर में डुबाते हुए श्रीकृष्ण रमण करवाते और स्वयं भी रमते थे ।। ३७ ।।

एवं गायन् गाययंस्तान् स्वदारान् ।
चित्रं नृत्यन्नर्तयन् नर्तितस्तैः ।।
गीतश्चैतान् श्लाघयन् श्लाघितस्तैः ।
रमेऽत्युच्चैर्बालको वा स्वबिम्बैः ।।३८।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण अपनी व्रजसुन्दरियों (स्त्रियों) को नर्तन और गायन में प्रवृत्त करा रहे थे और सुन्दरियाँ उन्हें नर्तन-गायन में प्रवृत करा रही थीं। स्वयं आश्चर्यजनक गायन करनेवाले श्रीकृष्ण की स्त्रियाँ स्तुति कर रही हैं और श्रीकृष्ण स्त्रियों की स्तुति कर रहे हैं, श्रीकृष्ण ऐसे ही उनके साथ अत्यधिक रूप से रम गये । जिस प्रकार बालक दर्पण में दीखने वाले अपने प्रतिबिम्ब से खेलता है, उसी प्रकार वे खेलते थे; ब्रिम्बानुकूल प्रतिबिम्ब-क्रिया होती है, वैसे ही गोपियाँ श्रीकृष्ण की कृति के अनुकूल प्रतिक्रियाएँ कर रही थीं ।। ३८ ।।

काचित् समाघ्राय भुजं निजांसे ।
न्यस्तं हरेः साधुपटीरलिप्तम् ।।
आनन्दमग्नोत्पुलकाश्रुकम्पा ।
सञ्चुम्ब्य शम्पेव बभौ स्थिराभ्रे ।।३९।।

किसी गोपी ने अपने स्कन्ध पर चन्दन की उटी लगा हुआ श्रीकृष्ण का हाथ सूँघ कर आनन्द का अनुभव किया। उससे उसके शरीर में रोमाञ्च का संचार हुआ, आनन्दाश्रु बहने लगे और देह में कँपकँपी होने लगी । तब वह स्थिर मेघ-खण्ड पर बिजली की तरह शोभायमान होने लगी ।। ३९ ।।

सा नृत्यजा श्रान्तिरभून्मृगाक्षी ।
विश्रामयामास विलासवृन्दात् ।।
स्नेहाकुलालीव विभूषयन्ती ।
स्वेदाङ्कुरैर्भालकपोलयोस्ता ।।४०।।

नर्तन के समय व्रजसुन्दरियों को जो थकावट आ गयी थी, उसने उन सुन्दरियों को मानों विश्रान्ति दी। तव उन्होंने नाना विलासों को वन्द कर विश्रान्ति ली । इस श्रान्ति ने प्रेम-विह्वल सखी की तरह इन व्रजसुन्दरियों के भाल और कपोलों को मौक्तिक बिन्दुओं की तरह पसीने के बिन्दुओं से अलङ्कृत किया ।। ४० ।।

शिथिलवसनकेशाः श्वासवेल्लत्कुचाग्राः ।
श्रमजलयुतभालाः सालसाङ्ग्यः क्रियासु ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्लमजनितरुचापि प्रेष्ठनेत्रातितुष्टिम् ।
पुपुषुरधिक वेलारास नृत्यावसाने ॥४१॥

रास की समाप्ति पर सभी गोपियाँ परिश्रम के कारण श्रान्त, क्लान्त थीं, फिर भी उस समय उनकी एक विशेष शोभा उनके प्रियतम श्रीकृष्ण के नेत्रों के लिए आनन्दप्रद थी, अत्यन्त सन्तोषप्रद भी। नर्तन के श्रम से गोपियों का भाल-प्रदेश पसीने की विन्दुओं से भर गया, शरीर के अवयव अत्यन्त मन्द हो गये, नर्तन की क्रिया में शिथिलता आ गयी, जोर से चलने वाले श्वासोच्छ्वास के कारण उनके स्तनों के अग्रभाग ऊपर-नीचे हिल रहे हैं, केशबन्ध ढीले हो गये हैं और परिधान किया हुआ वस्त्र भी शिथिल हो गया हैं ॥ ४१ ॥

फुल्लपुण्डरीकषण्डगर्वखण्डिचक्षुषो ।
हिण्डदण्डनेश कुण्डलेऽस्य गण्डमण्डले ॥
कापिताण्डवालिपण्डिता स्वगण्डमण्डलम् ।
न्यस्य तेन दत्तमत्ति पर्णपूग चर्वितम् ॥४२॥

श्रीकृष्ण के सुन्दर नयन फूले हुए सफेद कमल के गुच्छ की शोभा के गर्व को तोड़ने वाले हैं; उनके मकराकार कुण्डल जहाँ हिल रहे हैं, ऐसे गण्डस्थल पर ताण्डव नृत्य में अति निष्णात एक गोपी अपना गाल रख कर श्रीकृष्ण के स्वमुख से चर्वण कर दिया हुआ त्रयोदश द्रव्ययुक्त ताम्बूल अपने मुँह में लेकर खाती है ॥ ४२ ॥

स्वस्पर्शोत्पुलकाकीर्णं तत्स्पर्शोत्पुलकाञ्चितम् ।
कृष्णस्यांसे भुजं न्यस्य विशश्राम क्षणं परा ॥४३॥

किसी गोपी ने नृत्य की श्रान्ति से शिथिल होकर अपना हाथ श्रीकृष्ण के स्कन्ध पर रखा। उस समय गोपीहस्त के स्पर्श से श्रीकृष्ण का स्कन्ध रोमाञ्चित हो उठा और श्रीकृष्ण के स्पर्श से गोपी का हस्त पुलकित हुआ। दोनों ने इसी अवस्था में कुछ क्षण विश्राम किया ॥ ४३ ॥

कुचशिरसि निधायान्योन्यसंस्पर्श हर्षात् ।
पुलकिनि पुलकाढ्यं स्वेदिनि स्वेदयुक्तम् ॥
शतशत शशिशीतं नृत्यजक्लान्ति दिग्धा ।
स्वरमण करमेका श्रान्तिशान्ति जगाम ॥४४॥

एक गोपी अपने रमण श्रीकृष्ण के रोमाञ्चित और स्वेद से भरे हाथ को अपने रोमाञ्चित और स्वेद से भरे हाथ से अपने स्तनाग्र पर रखकर सैकड़ों चन्द्रों के शीतस्पर्श जैसा अनुभव करने लगी। नर्तन से क्लान्त गोपी ने इससे बड़ी भारी विश्रान्ति का अनुभव किया ॥ ४४ ॥

मुहुः कराब्जेन दयाब्धिमग्नः ।
तासां मुखात् स्वेदजलानि कृष्णः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्मार्जयन्नप्यशकन्न मार्ष्टुम् ।
तत्स्पर्श सौख्याद् द्विगुणी कृतानि ॥४५॥

दया रूपी सागर में डूबे श्रीकृष्ण अपने करकमलों के अग्र से बार-बार उनका स्वेद-जल पोंछ रहे थे, फिर भी उसे पोंछने में असमर्थ थे क्योंकि श्रीकृष्ण के स्पर्श से उन्हें जो सुखानुभव होता था, उससे स्वेद द्विगुणित होता था ॥ ४५ ॥

एका सुसख्यामृतदिग्धबुद्धिः कान्तस्य संधानपटाञ्चलेन ।
ममार्ज सस्वेदजलं निजास्यं स्वस्यापि तेनास्य च तादृशं तत् ॥४६॥

एक गोपी ने, जिसकी बुद्धि स्नेहमय हो गयी है, और जो अति स्नेहरूपी अमृत से पूरित है, श्रीकृष्ण के उत्तरीय के आँचल से पसीने से भरा अपना मुख पोंछा और अपने उत्तरीय से श्रीकृष्ण का स्वेद से भरा मुख साफ किया ॥४६ ॥

कृष्णाङ्गसङ्गादि विलास सिन्धा—
वानन्द जालस्य तरङ्ग मग्नाः ॥
भ्रश्यत् स्वमाल्याम्बरकुन्तलानाम् ।
आसन्नल संवरणे मृगाक्ष्याः ॥४७॥

व्रजसुन्दरियाँ श्रीकृष्ण के अंगस्पर्शादि विलास रूपी सागर, उसकी तरङ्गों, अनुभूत आनन्दरूपी जल में डूब गयीं; जिसके कारण विलास में गिरने वाली या छूटनेवाली मालाओं, फूलों, आभरण, वस्त्र और बिखरने वाले केशकलाप को पुनः सम्भालने-सँवारने में वे समर्थ न हुईं ॥ ४७ ॥

इत्थं समाप्य विविधाङ्गमनन्यसिद्धम् ।
ताभिः समं सरसरासविलास नृत्यम् ॥
प्रोद्यत्स्मरं पुनरमुं रतिकेलि नृत्यम् ।
कर्तुं समुत्सुकमनसं हि विविद्य वृन्दा ॥४८॥

हिमवालुक वालुकेऽमले पुलिने सह राधयाऽच्युतम् ।
विनिवेश्य तयोः पुरः सखीनिचयं सगणा न्यवीविशत् ॥४९॥

इस प्रकार विविधाङ्गी, अन्य किसी के लिए अशक्य अथवा स्वयं होने वाला स्वाभाविक नृत्य समाप्त कर फिर निश्चित रतिक्रीड़ा का नृत्य करने में अति समुत्सुक श्रीकृष्ण को देखकर वृन्दा ने कर्पूर कणिकाओं की तरह शीतधवल सुगन्धित बालुका प्रदेश में राधा के साथ श्रीकृष्ण को बैठाकर उनके सामने सखियों को खड़ा किया । (घनसार, शिताभ्र, हिमबालुक और चन्द्र सभी नाम कर्पूर के हैं ।) ॥ ४८-४९ ॥

कुसुमफलरसैस्तैभूरिभेदैः कृतानि,
मणिचषकभृतानि स्वादुवैशिष्ट्याभाञ्जि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विविधफलबिदशैरन्वितानित्यधात् सा,
हरिहरिदयितानामग्रतः सन्मधूनि ॥ ५० ॥

बाद में वृन्दा ने श्रीहरि और उनकी प्रियतमा ब्रजसुन्दरियों के आगे अच्छे-अच्छे, नाना प्रकार के मद्य रखे। कई प्रकार के फलों और फूलों के रसों से वे मद्य तैयार किये हुए थे और वे रत्नों के प्यालों में थे। वे विविध रुचियों के अनुरूप थे। व्यञ्जन के रूप में नाना प्रकार के फल भी बीच में रखे हुए थे ॥ ५० ॥

प्रत्यङ्गनायुगलमध्यमसौ स्वशक्त्या।
कृष्णः स्फुरंस्तदधरामृतवासितानि ॥
हासैर्विदंशसदृशैरपि तैर्विदंशैः।
ताः पाययन्नपिवदेष मधूनि तानि ॥ ५१ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्येक ब्रजसुन्दरी जोड़ी के बीच अपने लाघव से विराजमान होते थे और मधुर हास्य के साथ उन सुन्दरियों को फलों के साथ मद्यपान कराते थे। तथा उनके अधरोष्ठ से, जिसमें रसगन्ध विशेष आ गया है, मधु का पान करते थे ॥ ५१ ॥

कन्दर्पमाध्वीक मदाकुलाङ्गीं।
कंदर्पमाध्वीकमदानुशिष्टे ॥
राधां समादाय हरौ प्रबिष्टे।
विन्यस्त तल्पं पुलिनान्त कुञ्जम् ॥ ५२ ॥

मदन के मद के साथ मदिरामद होने से जिसका अङ्ग व्याकुल है, ऐसी राधा को लेकर मदन और मदिरा से प्रेरित श्रीकृष्ण ने बालुकामय प्रदेश के प्रान्त-भागान्तर्गत कुञ्ज में, जहाँ शैया सज्ज है, प्रवेश किया ॥ ५२ ॥

कन्दर्पमदबैक्लव्याद् घूर्णा पूर्णेक्षणाः सखीः।
वृन्दाप्यादाय कुञ्जेषु पृथक् पृथग् अपाययत् ॥ ५३ ॥

मदन के मद से शिथिल होने के कारण सभी सखियों की आँखें घूम रही थीं। वृन्दा ने इन सखियों को ले जाकर अलग-अलग कुञ्जों में सुलाया ॥ ५३ ॥

स्वाधीन भर्तृकावस्थां प्रापय्य राधिकां तया।
सहाययौ बहिः कृष्णः स्मयन् पूर्णमनोरथः ॥ ५४ ॥

श्रीकृष्ण ने श्रीराधा को स्वाधीनभर्तृका अवस्था में पहुँचाकर क्रीड़ा की समाप्ति पर राधा के आग्रह से ही उनकी वेषभूषा पूर्वावस्था की तरह की और श्रीराधा के साथ ही श्रीकृष्ण हँसते हुए कुञ्ज के बाहर आये। ऐसा लगा मानो श्रीराधा के मनोरथ पूर्ण हुए है ॥ ५४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तयेरितः स कुञ्जेषु प्रविश्य युगपत् पृथक् ।
स्वाधीनभर्तृकावस्थां प्रापयामास ताः सखीः ॥५५॥

उसके बाद श्रीराधा की प्रेरणा से श्रीकृष्ण ने अलग-अलग रूप से, अलग-अलग कुञ्जों में जाकर उन सब सखियों को स्वाधीनभर्तृका अवस्था में पहुँचाकर आनन्द प्रदान किया तथा कृतार्थ किया ॥ ५५ ॥

निर्गतः कुञ्जनिकरात् कृष्णस्ताभिरलक्षितः ।
एकः सन् राधिकामागात् स्वदर्शन मृदुस्मिताम् ॥५६॥

श्रीकृष्ण कुञ्जों से निकलकर एक रूप धारण कर श्रीराधा के पास आये । सखियाँ यह देख नहीं पायीं । श्रीकृष्ण के दर्शन से श्रीराधा मृदुहास्य कर रही थीं ॥ ५६ ॥

तत्रागता कुञ्जततेर्विनीव्रा ।
दृष्ट्वा निजालीं पुरतो हसन्तीं ॥
यत्नावृत स्वाङ्ग चयालिपालि- ।
र्नम्रानना लोलदृगेतयो चे ॥५७॥

कुन्ज से निकलकर सखियाँ वहाँ आयीं, जहाँ श्रीराधा बैठी थीं । नम्रता के साथ वे सामने हँसती हुई अपनी सखी श्रीराधा को देखकर बड़े प्रयत्न से अपने अवयवों को ढँकती हुई और नीचे मुख किये हुए (सम्भोगचिह्न छिपाते हुए लज्जित) चञ्चल दृष्टि से खड़ी रहीं । तब श्रीराधा सखियों से कहती हैं ॥५७॥

यो नायकः सोऽत्र सवृन्दया मया ।
रङ्गे स्थितः क्वापि गतो नहि क्षणम् ॥
नानर्तयद्वो रति नर्तनेऽसकौ ।
दशेदृशी वो वपुषः कुतोऽभवत् ॥५८॥

नायक भगवान् श्रीकृष्ण इस रङ्गस्थल में वृन्दा और मेरे साथ खड़े हैं, एक क्षण के लिए भी कहीं गये नहीं । इन्होंने रति-नर्तन में आपलोगों को नचाया नहीं । फिर भी आप सबकी यह दशा [सम्भोग चिह्न, अधरनखक्षताबि, विस्रस्त (शिथिल) केशवन्धादि] कैसे हुई ॥ ५८ ॥

हरिर्हसन्नाह निकुञ्जरङ्गे ।
नट्यस्त्विमा मूर्तिमतोज्वलेन ॥
रत्याख्य नृत्ये रसनायकेन ।
सन्नर्तिता यत् स्फुट तत्तदङ्काः ॥५९॥

तब श्रीकृष्ण ने हँसते हुए उत्तर दिया, लतारूपी रङ्गस्थल में रसों में श्रेष्ठ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उज्ज्वल रूप जो शृङ्गार रस है, उसने शरीर धारण कर, मूर्त होकर अर्थात् मेरे रूप में प्रकट होकर इन नटियों को रति नामक नृत्य में नचाया, इसीलिए इनके अवयवों पर, स्तनों पर नखक्षत, अधर पर दन्तक्षत आदि रतिनृत्य-चिह्न स्पष्ट दिखायी दे रहे हैं ॥ ५९ ॥

कृष्णे स्वरख्यां प्रणयोद्गतेर्ष्या।
स्ता ऊचुरस्मिन् रतिनृत्य एषा ॥
त्वां नर्तयन्ती सततं गुरुस्ते।
कर्तुं त्वया वाञ्छति नः प्रशिष्याः ॥६०॥

यह सुनकर उन सखियों के मन में श्रीकृष्ण और श्रीराधा के प्रति प्रेममूलक ईर्ष्या जाग्रत हो गयी। उन्होंने कहा—हे कृष्ण ! इस रति-नृत्य में तुमको सतत नचाने वाली यह राधा तुम्हारी गुरु है और तुम्हारे माध्यम से हम सब सखियों को प्रशिष्य बनाना चाहती हैं ॥ ६० ॥

निजेच्छया यत्र गुरूपसत्तिः।
स्याच्छिष्यता शास्त्रमता तयैव ॥
बलात् कृता नैव ततो न शिष्या
वयं गुरुस्त्वं विफलः श्रमो वाम् ॥६१॥

लेकिन शिष्य जब अपनी इच्छा से गुरु की सेवा या संगति करता है, तब शास्त्रसम्मत शिष्यत्व उत्पन्न होता है। अतः शिष्य की इच्छा के बिना जोर-जबरदस्ती से गुरुसेवा ठीक नहीं। इसलिए हम आपके शिष्य नहीं और आप हमारे गुरु नहीं। इस सम्बन्ध में आपका प्रयास व्यर्थ गया। आप अपनी इच्छा से अपनी गुरु श्रीराधा की सेवा कीजिये। (उपसत्ति शब्दके चार अर्थ हैं—सङ्गति, आसक्ति, सेवा और स्त्री। एक नकार की आवृत्ति से उभयत्र अन्वय है। इसलिए हमें प्रशिष्य बनाने के आप दोनों के प्रयास विफल हुए) ॥ ६१ ॥

जानासि नो नो नकुलाङ्गनानाम्।
वृत्तिं विशुद्धां सखिभोगिनि त्वम् ॥
तथापि सम्पादयितुं स्वसाम्यम्।
किं खिद्यसे प्रेर्य वृथा भुजङ्गम् ॥६२॥

सखियाँ भृकुटी टेढ़ी कर तथा आँखें बड़ी कर श्रीराधा से कहती हैं,—हे सखी, हे भोगशीले राधे ! हम सब नकुलाङ्गनाएँ हैं, हमारी विशुद्ध वृत्ति है, क्या तुम नहीं जानती ? अर्थात् जानती हो। तब जानते हुए भी तुम अपने समान बनाने की इच्छा से भुजङ्ग यानी जारकर्म करनेवाले कृष्ण को क्यों भेजती हो ? (भुजङ्ग का अर्थ सर्प भी होता है।) व्यर्थ में दुःखी क्यों होती हो, प्रेरणा देने का श्रम क्यों करती हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[इस व्याजार्थ से स्पष्ट अर्थ ऐसा है—हे सखिभोगिनी ! सखा श्रीकृष्ण हैं उनके साथ भोगविलास का सुख लेनेवाली हे राधे ! (भोग शब्द के अर्थ हैं सुख, धन, सर्पशरीर और फणा) अथवा सखी के द्वारा किये हुए भोग की इच्छा करने वाली हे राधे ! भ्रातृभोगिनी ऐसा व्यंग्यार्थ भी है । सखिभोगिनी शब्द निन्दा-व्यञ्जक है । हे राधे ! हम कुलाङ्गनाएँ हैं, हमारी विशुद्ध चित्तवृत्ति तुम नहीं जानती क्या ? अर्थात् जानती हो । तब जानते हुए भी तुम हमें अपने समान बनाने के लिए भुजङ्ग को यानी अपनी इच्छा करनेवाले पुरुष को (भुजङ्ग शब्द के नानार्थ हैं सर्प, विट आदि) क्यों प्रेरणा देती हो । अथवा भुजं गच्छति इति भुजङ्गः, यानी जो अपने हाथ में रहता है । कुञ्ज में जिसको तुमने भुजाओं से बाँधा है और वैसा वह अब भी रहता है अर्थात् अपने वश में किया हुआ है श्रीकृष्ण—उसे प्रेरणा देकर अब क्यों क्लेश पाती हो ? ॥ ६२ ॥

—वारिविहार—

इत्थं विधाय पुरु नर्मविहारनृत्यम् ।
ताभिः समं मदकरीव करेणुभिः सः ॥
तत्तच्छ्रमापनयनाय कलिङ्गपुत्र्याम् ।
कर्तुं समारभत वारिविहारनृत्यम् ॥ ६३ ॥

श्रीकृष्ण ने इस प्रकार गोपियों के साथ पूर्ण रूप से विहार-नृत्य करने के बाद श्रम दूर करने के लिए गोपियों के साथ इस प्रकार चलते हुए जिस प्रकार मदोन्मत्त हाथी हथनियों के साथ हो, कलिन्दकन्या यमुना के पानी में उतरकर जल-विहार रूप नृत्य करना शुरू किया ॥ ६३ ॥

तोये तदोरुद्वयसे कदाचित् ।
स नाभिमात्रे क्व च कण्ठदघ्ने ॥
आकृष्य तास्ताभिरलं निषिक्तः ।
प्रिया हसंस्ताः कुतुकी न्यषिञ्चन् ॥ ६४ ॥

(गोपिकाओं के साथ इस प्रकार पूर्ण रूप से विहारनृत्य करते समय) कुतूहल से भरे श्रीकृष्ण कहीं-कहीं ऊरु (जंघा) तक जल में रहकर, कभी नाभि तक और कभी कण्ठ तक गहरे जल में रहकर गोपियों को खींचने लगे । उन्हें खींचकर श्रीकृष्ण उनका सिंचन करते थे । जब गोपियों ने श्रीकृष्ण पर पानी की वर्षा की, तो श्रीकृष्ण हँसते हुए उन पर पानी फेंकने लगे ॥ ६४ ॥

एकैकाभिः पञ्चषाभिः समस्ताभिः पृथक् पृथक् ।
नानालीलाग्लहां ताभि व्यात्युक्षीं विदधे हरिः ॥ ६५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जये तं तं समादातुं ग्लहं दातुं पराजये ।
अनिच्छुभिर्द्वयं कर्तुं स ताभिः कलहायते ॥ ६६ ॥

श्रीकृष्ण ने एक-एक गोपी के साथ पृथक्-पृथक्, अथवा एक ही समय पाँच-छः गोपियों के साथ अथवा सभी के सभी के साथ एकत्र भाव से जल-विहार किया। इस जलसेचनक्रीड़ा (व्यात्युक्षी) में पण या दाँव पर थे आलिङ्गन, चुम्बन आदि ॥ ६५ ॥

इस जलविहार रूपी नृत्य में गोपिकाओं की जय हो तो वे श्रीकृष्ण से आलिगन, चुम्बनादि के पूरा करतीं और पराजय होने पर आलिगनादि के लिए गोपिकाओं के अनिच्छुक होने पर श्रीकृष्ण उनसे झगड़ा करते थे ॥ ६६ ॥

रात्रौ च चक्रमिथुनेन युतानि भृङ्गः ।
फुल्लाम्बुजानि पिबतीति हरौ ब्रुवाणे ॥
दोः स्वस्तिकेन रुरुधुर्हृदयं प्रियास्ता ।
वासोञ्चलेन वदनं च विशङ्किता दाक् ॥ ६७ ॥

श्रीकृष्ण जब कहने लगे कि रात्रि के समय प्रस्फुटित कमलों की दोनों ओर चक्रवाक् पक्षी बैठे हैं और भ्रमर फूले हुए कमलों को पी रहे हैं यानी मधुपान कर रहे है, तब उन प्रियाओं ने इस आशंका से कि चक्रबाक् की जोड़ी सदृश स्तनद्वय और कमल सदृश मुख देखकर भ्रमर उन पर आक्रमण करेंगे, उन्होंने अपने दोनों हाथों का स्वस्तिक रूप बनाकर दाहिना हाथ वाम स्कन्ध पर और वाम हस्त दाहिने स्कन्ध पर रखकर अपना हृदय ढक लिया तथा आञ्चल से मुख भी आवृत कर लिया ॥ ६७ ॥

निजदृग्विजितद्यकर्या घट्टित प्रसृता स्वयं हरिं चकिता ।
यत् परिरेभे राधा, सख्यं मेने स तेनास्याः ॥ ६८ ॥

श्रीराधा की दृष्टि (नयन) शफरी मछली (मत्स्य की एक जात) से भी सुन्दर थी। इन नयनों ने शफरी का सौन्दर्य जीत लिया, अतः अपने पराभव से दुःखी शफरी श्रीराधा के दोनों पैरों के बीच में छिप जाना चाहती थी। उस समय उसका स्पर्श श्रीराधा की प्रसृता (जङ्घा) से हुआ और भय से चकित राधा ने श्रीकृष्ण का आलिङ्गन किया। यह देखकर कि श्रीराधा ने स्वयं आलिंगन किया है, श्रीकृष्ण ने मान लिया कि शफरी के साथ अपना सख्य है ॥ ६८ ॥

कमलाकमलि सखीनां कमलाकमलि च बिसाबिसिप्रधनम् ।
यदभूत्तत्पश्यत इह दूराच्चित्रं हरेर्मनो विजितम् ॥ ६९ ॥

जल-विहार के समय व्रजसुन्दरियाँ कमलाकमली नामक क्रीड़ा करतीं थीं। (कमल का एक अर्थ है जल और दूसरा कमल यानी पद्म; एक दूसरे पर पानी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फैंकने की क्रीड़ा, कमल फैंकने की क्रीड़ा और कमलतन्तुओं से बन्धन की क्रीड़ा, भगवान श्रीकृष्ण इसे दूर से देख रहे थे। उस समय व्रजसुन्दरियों का आश्चर्यजनक सौंदर्य देखकर श्रीकृष्ण का मन खिंचा जा रहा था। (इस खेल में किसी गोपी की जीत नहीं हुई, किन्तु दूर से देखने वाले श्रीकृष्ण का मन उन्होंने जीत लिया, यही आश्चर्य है। व्यवहार में खेलनेवालों में कोई जीतता है और कोई हारता है, देखने वाले का इस हार-जीत से सम्बन्ध नहीं रहता। यहाँ यही आश्चर्यकारक है कि देखने वाले श्रीकृष्ण हार गये।) ॥ ६९ ॥

द्वित्राभिः पञ्चषाभिश्च सप्ताष्टाभिः सहाच्युतः।
व्यतनोन्मण्डलीभूय जलमण्डूक वाद्यकम् ॥ ७० ॥

बाद में श्रीकृष्ण ने दो-दो, तीन-तीन, पाँच-पाँच, छः-छः, अथवा सात-सात, आठ-आठ गोपियों के साथ मण्डलाकार होकर जलमण्डूक वाद्य बजाने की लीला की ॥ ७० ॥

निर्लेपतां कुचयुगानि निरञ्जनत्वम्।
नेत्राणि मोक्षमभजन् रशनाः कचाश्च ॥
नीव्यश्च निर्गुणदशां सहहारमाल्यैः।
मग्नासु तद्घनरसे रमणीष्वमूषाम् ॥ ७१ ॥

जलक्रीड़ा के समय जब गोपियाँ उस घनरस (जल) में निमग्न थीं, उस घमरस यानी सान्द्र जलरस अथवा क्रीड़ा में मग्न थीं, (रस के अर्थ गन्ध, रस, जल, श्रृंगार, विष, वीर्य, कटुरस, द्रव्य पदार्थ आदि हैं।) तब उस दशा में उनका स्तनयुगल लेपरहित हो गया, यानी उनका केशर-कस्तूरी लेप धुल गया, अथवा लेपरहित यानी मायाबन्धरहित ब्रह्मनिष्ठ जैसी अवस्था हो गयी; उनकी आँखें निरञ्जन हो गयीं यानी आँखों का काजल, अञ्जन धुल गया अथवा अञ्जन यानी मायारूपी अज्ञान से वे मुक्त हो गयीं। कमर की रशना, यानी मेखला मुक्त हुई, केश भी बन्धनमुक्त हुए। वही मानो उनका मोक्ष है। मणिमुक्तहार और पुष्पमालाएँ निर्गुण हो गयीं—गुण यानी दौर से भी निकल गयीं—वही मानो निर्गुण दशा, गुणातीत मुक्त दशा है। (जब वे जलक्रीड़ा में मग्न हो गयीं, तब उनके कुचों ने शुष्क ज्ञाननिष्ठ धर्म संपादन किया, अथवा भक्ति मिलने पर अवशिष्ट प्रासव्य कुछ रहता नहीं, अतः उन्होंने मुक्तों का धर्म स्वयं ग्रहण किया)। ७१।

आलेपनालङ्करणैरमूषाम्।
अनावृता वारिविहारधौता ॥
क्लिन्नाम्बरोद्यत् सहजाङ्ग शोभा।
लोभाय कृष्णस्य दृशोस्तदासीत् ॥ ७२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्रजसुन्दरियों की अङ्गकान्ति जलविहार से धोयी गयी थी, कस्तूरी-चन्दनादि लेप विरहित हो गया था और भीगे हुए वस्त्र के कारण अङ्ग-शोभा, जिसमें चमक रहती है, और भी नैसर्गिक रूप से प्रकाशित हुई। उस चमकने वाली अङ्गकान्ति ने श्रीकृष्ण के मन में लोभ उत्पन्न किया ॥ ७२ ॥

तासां वक्षश्चन्दनैः श्वेततोया।
कृष्णा साम्यं गङ्गयाऽसौ गतापि ॥
शौरेस्तत्तत्केलिसौभाग्यलाभात्।
ताभिः शश्वत् सुष्ठु सा तामजैषीत् ॥ ७३ ॥

जलविहार के समय यमुना नदी गोपियों के वक्षःस्थल के चन्दन से सफेद हो गयी और उसमें गङ्गा का साम्य हुआ। किन्तु तीर पर श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ जो चिरकाल क्रीड़ा हुई, उसके अनुभव का सौभाग्य यमुनाजी को ही मिला, गङ्गा को नहीं। अतः यमुना ने गङ्गा को जीत लिया ॥ ७३ ॥

इत्थं विहायाम्बुविहारनृत्यम्।
कान्तः स कान्ताभिरवाप्ततीरः ॥
सखीकुलैर्मार्जित केशवर्म्मा।
दधार प्रत्युद्गमनीय वस्त्रम् ॥ ७४ ॥

मदनसुन्दर श्रीकृष्ण अपनी प्रिया व्रजसुन्दरियों के साथ जलक्रीड़ा रूप नृत्य पूर्ण कर यमुनाजी के तीर पर आये। वहाँ सखियों ने उनके केश और शरीर अच्छी तरह धोकर सुस्नात बनाया। बाद में श्रीकृष्ण ने पहनने और ओढने के धौतवस्त्रों का परिधान किया ॥ ७४ ॥

वृन्दा ताभिः समं कृष्णमानीय स्वर्णमण्डपम्।
तत्पूर्वकुट्टिमे पुष्पास्तरणे तं न्यवीविशत् ॥ ७५ ॥

बाद में वृन्दा ने उन व्रजसुन्दरियों के साथ श्रीकृष्ण को सुवर्णमण्डप में लाकर उसके पूर्वभाग के मणिखचित सिंहासन पर सज्ज फूलों के आसन पर बैठाया ।७५।

ततः सवृन्दोपनिनाय वृन्दा।
कल्पागवल्लीफलसम्पुटांस्तान् ॥
पूर्णान् विचित्राम्बरभूषणानु—।
लेपाञ्जनैर्नागजवर्णकैश्च ॥ ७६ ॥

फूलों के आसन पर बैठाने के बाद वृन्दा ने अपनी सखियों के साथ मनोवाञ्छित वस्तु देने में समर्थ कल्पवृक्ष की वल्लियों के फल, करण्डक; पात्र श्रीकृष्ण, श्रीराधादि के पास लाकर रखे। उन पात्रों में सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, अलङ्कार, केशर, कस्तूरी आदि अंगराग, तिलक करने के लिए सिन्दूर आदि और गैरिकादि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्ण श्रीकृष्ण-राधादि के शरीर विभूषित करने के लिए रखे थे। अञ्जन आदि भी थे।। ७६।।

तत्तन्नामाङ्कितानालीततिरादाय पेटकान्।
कृष्णंराधां सखीं चामूः पृथक् पृथग् अभूषयत्।। ७७।।

वृन्दा के साथ वे सखियाँ श्रीकृष्ण, राधा आदि नामों से अङ्कित करण्डक लेकर खड़ी थीं। वृन्दा ने उनमें से आभूषण, वस्त्र आदि लेकर श्रीकृष्ण, श्रीराधा, उनकी सखी ललिता आदि को सजाया, उनकी अलग अलग वेषभूषा कीं।। ७७।।

हरिरुज्ज्वलरसमूर्तिः (र्ती), रसपरिणति मूर्तयो हि राधाद्याः।
विधुरयमस्य कलास्ता एकान्मानोऽपि तत् पृथग् देहाः।। ७८।।

श्रीहरि स्वयं उज्ज्वल रस शृङ्गार रूप हैं, यानी मदनरूप हैं, और राधादि सुन्दरियाँ मानों रति की मूर्तियाँ हैं। श्रीकृष्ण मानो चन्द्र और राधा, ललितादि मानो चन्द्र की कलाएँ हैं अर्थात् दोनों एक रूप होते हुए पृथक् रूप धारण किये हुए हैं।। ७८।।

मिथः स्नेहाभ्यङ्गरम्या सख्योद्वर्तन सुप्रभाः।
तारुण्यामृतसुस्नाता लावण्यवसनोज्ज्वलाः।। ७९।।
मिथः सौभाग्यतिलकाः सौन्दर्यस्थासकरञ्चिताः।
अष्टाभिश्चित्रिताङ्गयश्च स्तम्भाद्यैर्भावविवर्णकैः।। ८०।।
किलकिञ्चितविव्वोकाद्युन्मादोत्सुकतादिभिः।
नानाभावैरलङ्कारैः सुष्ठवलङ्कृतमुर्तयः।। ८१।।
सप्रियास्ता प्रिया यद्यप्यन्तरित्थं विभूषिताः।
प्रियालिभिर्बहिरपि भूषिता भूषणैर्जगुः।। ८२।।

पूर्वोक्त श्रीराधा, ललिता आदि सखियाँ श्रीकृष्ण के साथ शोभायमान हुईं। (चार श्लोकों का मिलकर एक ही अर्थ है—चार श्लोकों से पूरा अर्थ हो तो उसे 'कुलक' कहते हैं।) श्रीराधादि व्रजसुन्दरियों का श्रीकृष्ण पर जो स्नेहभाव था और श्रीकृष्ण का उन पर जो स्नेहभाव था, वह स्नेह ही शरीर और सिर पर लगाने का तेल था। (स्नेह का अर्थ तेल भी है।) परस्पर प्रेमरूपी तेल से अभ्यंग (तेलमर्दन) करने से वे सुन्दर दीखती थीं। परस्पर का सख्य यानी एकात्मता ही स्नान के समय शरीर पर लगाने की उटी थी। अंगराग चूर्ण के लेप से उसकी कान्ति मानो उज्ज्वल हो गयी। उनका तारुण्य (यौवन) ही अमृत था, जिससे वे अच्छी तरह स्नान किये हुए थीं, और उनके शरीर की लावण्यमयी कान्ति ही वस्त्र थे, जिनसे वे सुशोभित प्रतीत हो रही थीं।। ७९।।

परस्पर का सौभाग्य ही तिलक, उनका सौन्दर्य ही स्थासक यानी स्नानोत्तर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लगाने वाले अंगराग था, जिसके चर्चित होने से वे मनोहर लग रही थीं, नर्तनादि के कारण या श्रृङ्गारोद्रेक से उत्पन्न अष्ट सात्विकभाव ही वर्ण हैं। इनसे जिनका शरीर चित्र-विचित्र रूप से शोभायमान है।। ८०।।

और किलकिञ्चितादि, स्त्रीविलासादि नाना भावों और अलङ्कारों से जिनके शरीर अलंकृत हुए हैं, साथ-साथ उन्माद, उत्सुकता आदि भाव भी जिनकी शोभा बढ़ा रहे हैं ।। ८१ ।।

इस प्रकार श्रीकृष्ण प्रिय और राधादि उनकी प्रियाएँ यद्यपि इस रूप में आन्तरिक भावविलासों से विभूषित थीं, फिर भी प्रिय सखियों के साथ बाहर भी शरीर वसन-भूषणों से सजाये हुए थे। इससे उनकी सौंदर्य-सीमा परा कोटि की प्रतीत होती थी।। ८२ ।।

अनङ्गगुटिकां साधु विलासं दुग्धलड्डुकम् ।
आनीतं रूपमञ्जर्या यद् यानि वृन्दया वनात् ।। ८३।।

फलानि रसरूपाणि मधुतुल्य रसानि च।
तान्यतत्वाचम्य ताभिः स विवेश केलिमन्दिरम् ।। ८४ ।।

अब उन सबकी भोजनादि क्रियाओं में भी एकरूपता दिखाते हैं। रूपमञ्जरी अनङ्ग, गुटिकादि उत्तेजक पदार्थ तथा दूध, लड्डू आदि भक्ष्य पदार्थ लायीं। उसी प्रकार वृन्दा अरण्य से ऐसे फल लायीं, जिनमें बीज, त्वचा आदि हेयांश कुछ भी नहीं था बल्कि सर्वांश भक्षणीय थे और जो मधु की तरह मधुर रसपूर्ण थे तथा जिनका रस मधुर सुगन्ध पूर्ण एवं मादक था। सभी ने साथ में बैठकर उनका भक्षण किया और आचमन कर केलिमन्दिर यानी विलासमन्दिर में प्रवेश किया ।। ८३-८४ ।।

तस्मिन् मुक्त चतुर्द्वारि यमुनानिल शीतले।
कोटिसूर्यांशु सद्रत्न चयांशुपरमोज्ज्वले ।। ८५ ।।

मनोजकेलिनिलयेऽगुरुधूपातिसौरभे ।
विन्यस्त रत्नपर्यङ्के हंस तूलिकयान्विते ।। ८६ ।।

सूक्ष्माम्बरावृतावृन्त सत् पुष्पास्तरणोपरि ।
नानोपधान चित्रास्ते कृष्णः सुष्वाप कान्तया ।। ८७ ।।

त्रिभिः = सन्दानितकम्

अब केलिमन्दिर के सौन्दर्य और उनके शयन का वर्णन करते हैं। यमुना के जल का स्पर्श कर बहने वाली ठण्डी वायु जहाँ चल रही हैं, ऐसे कुञ्ज के चारों द्वार खुले हैं। कोटि सूर्यों की किरणों की भाँति अति तेजस्वी किरणों वाले अच्छे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रत्नों किरणों से प्रकाशित शयन मन्दिर, मदनक्रीड़ा गृह के जहाँ का वातावरण अगुरुचन्दन धूप से सुगन्धित है, मध्य भाग में रत्नपूर्ण मञ्चक रखा हुआ है, जहाँ हंस के पिच्छों की गद्दियां और तकिये हैं जो पतले वस्त्र से आच्छादित है, जिन पर वृन्त (डंठल) रहित कोमल सुगन्धित, प्रस्फुटित फूल रखे हुए हैं, जहाँ हस्त, मस्तक, पद, कुक्षि आदि स्थलों पर रखने योग्य चित्र-विचित्र रंग के बड़े, मध्यम छोटे तकिये रखे हुए हैं। ऐसी शैया पर श्रीकृष्ण ने अपनी कान्ता राधा के साथ शयन किया ॥ ८५, ८६, ८७ ॥

पर्यङ्क पार्श्वस्थित खट्विाकायुगे ।
सुखं निदिष्टे ललिता विशाखिके ॥
कृष्णस्य ताम्बूल सुचर्वितानने ।
ताम्बूलमास्वादयतां निजेश्वरौ ॥ ८८ ॥

श्रीकृष्ण और राधिका के पर्यङ्क की दोनों ओर दो खट्वाएँ (खाट) रखी हुई थीं। उन खाटों पर ललिता और विशाखा सुख से बैठी थीं। श्रीकृष्ण के मुख से दिया हुआ ताम्बूल उन दोनों के मुख में था। उस समय उनके स्वामी श्रीराधा-कृष्ण ने भी ताम्बूल खाया था ॥ ८८ ॥

श्रीरूपरतिमञ्जर्यौ पादसंवाहनं तयोः ।
चक्रतुश्चापरा धन्या व्यजनैस्तावबीजयन् ॥ ८९ ॥

श्रीरूपा और रतिमञ्जिरी दोनों ने चरण दबाकर उनकी सेवा करना आरम्भ किया और अन्य धन्य पुण्यवान् सखियों ने पंखा लेकर उन्हें हवा झलना शुरू किया ॥ ८९ ॥

स्वयं तौ परिचर्येत्थं निर्गताः केलिमन्दिरात् ।
सख्यस्ताः सुषुपुः, स्वे स्वे कल्पवृक्षलतालये ॥ ९० ॥
श्रीरूपमञ्जिरीमुख्याः सेवापर सखीजनाः ।
तल्लीलामन्दिरबहिः कुट्टिमे शिश्यिरे सुखम् ॥ ९१ ॥

ललिता और विशाखा दोनों इस प्रकार कुछ समय तक उनकी सेवा कर क्रीड़ामन्दिर से निकल गयीं। और वे सब कल्पवृक्षों के लताकुञ्जों में अपने-अपने स्थलों पर सो गयीं ॥ ९० ॥

और श्रीरूपमञ्जिरी आदि सखियाँ अपने सेवाशील स्वभाव के कारण लीला-मन्दिर के बाहर रत्नमणिखचित भूमि पर आराम से सो गयीं ॥ ९१ ॥

यत् पालितं तातमुखैर्विवर्धितम् ।
लीलारसैर्मित्रगणैर्निषेवितम् ॥
भक्तैः सदास्वादितमेतदालिभिः ।
श्रीराधया कृष्णरसामृतम् फलम् ॥ ९२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[इस प्रकार श्रीकृष्ण का प्रभातकाल से रात्रि के प्रथम प्रहर तक आठ कालों की लीला का वर्णन समाप्त कर उनके सेवकों का वर्णन करते हैं, जो दास आदि चार प्रकार के हैं। इनमें मधुरा भक्ति द्वारा सेवा करने वाले ही सर्वाधिक सुखोत्कर्ष में रहते हैं।

श्रीकृष्ण ही रसामृत फलस्वरूप हैं। रस प्रेमरूप हैं। उसके चार प्रकार हैं— दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर। ऐसे चार प्रकार का प्रेम ही अमृत है।]

जिस श्रीकृष्ण रसामृत-फल का रक्षण यशोदा, नन्द आदि ने वात्सल्यादि लीला रसों से किया (प्रिय व्यक्ति का अनुकरण या अनुसरण ही लीला है), जिस श्रीकृष्णरसामृत-फल का सेवन सुबल मधुमङ्गलादि ने मित्र रूप से सख्यरूप लीलारसों में किया, जिस श्रीकृष्णरसामृत का सेवन (रक्तक पत्रक आदि ने) दास बनकर दास्य रूप साधन से किया, उसी श्रीकृष्ण रूप रसामृत का आस्वादन श्रीराधा ने स्वयं अपनी सखियों के साथ मधुर फलस्वरूप लीला रसों से किया, उस अमृत का वास्तविक संभोग किया और सुख का अनुभव किया।

तात्पर्य—श्रीकृष्णरसामृतफल का उनके माता-पिता ने वात्सल्य भाव से सिर्फ पालन-पोषण किया, तज्जन्य आनन्दांश उन्हें मिला; किन्तु पूर्ण रूप से नहीं। मित्रों ने सख्य भाव से जो आस्वाद लिया, वह भी बहिरङ्ग ही था। भक्तों ने दास्य भाव से सेवन किया, फिर भी उन्हें पूर्ण ताद्रूप्य का अनुभव नहीं हुआ। वही श्रीकृष्णरसामृत सखियों के साथ श्रीराधा ने स्वयं माधुर्य भाव से पूर्णतया आत्मसात् किया, पूर्ण आनन्द का आस्वाद लिया। इसलिए उनमें श्रीराधा और गोपिकाओं की भक्ति सर्वश्रेष्ठ है, परम पुरुषार्थ ब्रह्मानन्द स्वरूप साक्षात्कार करने वाली है॥ ९२॥

कृष्णस्य वृन्दाविपिनेऽत्र राधया।
लीला अनन्ता मधुराश्चकासति॥
क्षणे क्षणे नूतन नूतनाः शुभाः।
दिङ्मात्रमेतन्मयका प्रदर्शितम्॥ ९३॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण की राधा के साथ अनन्त मधुर लीलाएँ हैं, जो वृन्दारण्य में सर्वदा नित्य होती हैं। वे अति शोभायमान और रसमय हैं। वे प्रतिक्षण नव-नव और कल्याण रूप होती हैं, किन्तु मैंने यहाँ उनमें से कुछ लीलाओं का दिग्दर्शन मात्र किया है॥ ९३॥

श्रीरूपदर्शितदिशा लिखिताष्टकाल्या।
श्रीराधिकेशकृत केलिततिर्ममेयम्॥
सेवास्य योग्यवपुषाऽनिशमत्र चास्या।
रागाध्व साधकजनैर्वपुषा विधेया॥ ९४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीरूप गोस्वामी ने जैसा वर्णन किया हैं, उसके दिग्दर्शन के अनुसार मैंने श्रीकृष्ण की अष्टकाली (आठ कालों में होने वाली, दिन के आठ भाग कर प्रत्येक भाग में होनेवाली) लीला परम्परा का वर्णन किया ।

श्रीराधा और भगवान श्रीकृष्ण की सेवा योग्य शरीर से, सेवापात्र से, शुद्ध भाव सम्पादन कर, गुरु की आज्ञानुसार नियमानुष्ठान से करें; राजमार्ग यानी भक्तिमार्ग के जो साधक हैं, वे रात-दिन मनःपूर्वक उस-उस रूप से स्वयं अनुष्ठान करें या मनन आदि द्वारा ताद्रूप्य का अनुभव प्राप्त कर भवबन्धन तोड़ दें ॥९४॥

पादारविन्दभृङ्गेण श्रीरूपरघुनाथयोः ।
कृष्णदासेन गोविन्द लीलामृतमिदं चितम् ॥ ९५ ॥

यहाँ ग्रन्थकार अपनी स्वाभाविक दीनता प्रकट करता है, अपना नामोल्लेख करता है। श्रीरूप गोस्वामी और रघुनाथ गोस्वामी दोनों के चरणकमलों में भृङ्ग की तरह आसक्त श्रीकृष्णदास नामक मैंने इस 'गोविन्दलीलामृतम्' की रचना की। श्रीकृष्णलीलामृत समुद्र की तरह अनन्त हैं और नित्य सिद्ध है। उस समुद्र से मैंने कुछ रत्न, कुछ मधुबिन्दु निकाले हैं, जिस प्रकार भ्रमर फूलों से मधु बिन्दु निकालता है ॥ ९५ ॥

यैरेतत् परिपीयते हृदि लसत् तृष्णातिरेकान्मुहुः ।
ब्रह्माद्यैरपि दुर्गमं व्रजविधोर्लीलामृतं राधया ॥
वृन्दारण्य विलासिनी कुमुदिनीवृन्दस्य बन्धुर्व्रजे ।
कारुण्यादचिरेण वाञ्छिततमं तेषां तनोतु स्वयम् ॥ ९६ ॥

इस श्लोक में इस ग्रन्थ के अनुशीलन का माहात्म्य कहते है। श्रीराधा के साथ गोकुल-चन्द्र भगवान् श्रीकृष्ण की लीला अमृत है। इस अमृत का आस्वाद जो भक्त हृदयोत्थित अति तृष्णा, उत्कट इच्छा से लेते हैं, अति आग्रह से सुनते या पढ़ते हैं, उनकी परम इच्छाएँ वृन्दारण्य की विलासिनी राधादि व्रजसुन्दरियाँ, जो रात्रिविकासी कमल (कुमुदिनी) हैं, और इस समूह के बन्धु श्रीकृष्ण चन्द्र (चन्द्रोदय से कुमुदिनियाँ फूलती हैं) सकरुण होकर पूर्ण करें। यह अमृत ब्रह्मादि देवों के लिए भी दुर्लभ है।

दूसरा अर्थ—श्रीराधा के साथ श्रीव्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण के चरणकमलों की सेवा का अवसर ब्रह्मादि देवों के लिए भी दुर्लभ है। इस प्रकार विशेषण रूप से विधेय ही कहा गया है।

अथवा, ऐसा अर्थ भी है कि ब्रह्मादि देवों के लिए जो दुर्लभ है वह वाञ्छित, श्रीकृष्ण अमृत का सेवन करने वालों को दे दें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेष्य की तरह विशेषण का प्रयोग 'गोत गोविन्द' के पद्य—'मीलद् दृष्टि-मिलत्कपोल पुलकम्......' में है। इसका अर्थ इस प्रकार है—

परस्पर दृष्टि का मिलन हो गया है। गाल पर गाल रखने से रोमाञ्च का सञ्चार हुआ है। बारम्बार सीत्कार शब्द हो रहा है। उससे अस्पष्ट व्याकुल, क्रीड़ाजन्य विकृत ध्वनि मुख से निकल रही हैं। दन्तप्रभा अधरोष्ठ पर पड़ने से अधर धवल वर्ण के दिखायी दे रहे हैं। स्तन के श्यामवर्ण ऊँचे अग्रभाग पर गाढ आलिङ्गन किया हुआ है। ऐसी हरिणलोचना ने आनन्द के अतिशय से अपना शरीर स्वच्छन्द मुक्त छोड़ दिया है। दृढालिङ्गन से कुछ क्लेश होते हुए उसे वह अति प्रिय लग रहा है। ऐसी सुन्दरी का मुखपान पुण्यवान मनुष्य ही कर सकता है। उद्देश्य यह है कि विधेय भाव बदलता है। धन्य विशेषता है, वही विशेष्य यानी मुख्य विधेय है। इसी प्रकार इस श्लोक में यह कृष्णामृत, जो ब्रह्मादि को भी दुर्लभ है, विधेय तरीके से लेना चाहिए, अथवा ब्रह्मादि का दुर्लभ जो मनोरथ है, वह मनोरथ श्रीकृष्ण उन्हें दे दें, ऐसा अर्थ लेना चाहिए ॥ ९६ ॥

श्रीचैतन्यपदारविन्द मधुप श्रीरूपसेवाफले ।
दिष्टे श्रीरघुनाथदासकृतिना श्रीजीवसङ्गोद्गमे ।
काव्ये श्रीरघुनाथ भट्टवरजे गोविन्दलीलामृते ।
सर्गोऽयं रजनी विलासवलितः पूर्णस्त्रयोविंशकः ॥ ९७ ॥

मैं भ्रमर की तरह श्रीचैतन्यदेव के चरणारविन्द का दास हूँ; और श्रीरूप सेवा के फलस्वरूप उनका उपदेश किया हुआ तथा जीवसंगति से प्रादुर्भूत यह श्रीरघुनाथ भट्ट कृत काव्य, श्रीगोविन्दलीलामृत है। रात्रिविलास से पूर्ण उसका यह तेईसवाँ सर्ग हुआ ॥ ९७ ॥

श्रीगोविन्दलीलामृते श्रीराधाकृष्णयो रजन्यां ये विलासास्तैर्वलितस्त्रयोविंशः सर्गोऽयं पूर्णतामयात् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकवि श्रीकर्णपूर विरचिता

श्री आनन्दवृन्दावनचम्पूः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महाकवि श्रीकर्णपूरविरचिता

श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः

विंशः स्तबकः

(रासविलासनामकः)

अथ प्राणप्रिया प्राणप्रियाननचन्द्रगलितेन ललितेन लयितसुधारसेन निर्वापितहृदयतापानला पानलालित्यमन्तरेणापि मत्तेव यदि समुज्जृम्भमाणे मधुरिमणि रमणिरत्नसभा सभाजिता सती विजयते स्म ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण के लिए प्राणों में भी प्रिय रत्नस्वरूपा रमणियों की सभा की हृदयाग्नि का सन्ताप प्राणप्रिय श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र से निकलने वाले वाग् रूपी सुधारस से शान्त हो गया है, वह सभा मदिरापान के बिना ही मदमत्त जैसी माधुर्य रस के प्रवाह में डूबी हुई, एक तरह से सम्मानित, सर्वोत्कर्ष में मग्न होकर मानो विजय युक्त हुई ॥ १ ॥

जयते स्मरकोटिलावण्यं दयितस्य तस्य नयनोत्सवपुषे वपुषे स्पृहावती च बभूव भूवलयस्य सौभाग्यवती तदनन्तरम् ॥ २ ॥

अखण्ड भूमण्डल में जिसका सौभाग्य उत्कृष्ट है, ऐसी वह रमणी-सभा कोटि मदनों के सौन्दर्य को तिरस्कृत करनेवाले अपने प्रियतम के नयनानन्द बढ़ाने वाले शरीर-सौन्दर्य की अभिलाषा करने लगी ॥ २ ॥

तरङ्गितकौतुकेन केनचिदपि क्वचन च न चमत्कारकारिणाऽपि नटेनाविष्कृतं, शुभरतेन भरतेन मुनिना निनायितं, हल्लीशकतयैव यत् तदेव तदा तालबन्धमण्डलभेदेन स्वयमेव रासत्वेन सृज्यमानमानन्दकन्दकमनाविलासलास्य-विशेषं विधित्सुनाधित्सुना च तासां मनसि चमत्कारं कमपि निजगदे जगदेव विस्मापकेन तेन रमणीयमणीयशः पताकानिकर इव दयितासमाजः ॥ ३ ॥

तदनन्तर श्रीकृष्ण जिस नृत्यविशेष का विधान करना चाहते थे, वह निर्दोष था एवं उस समय गोपियों के मण्डलाकार नृत्य के द्वारा ताल में बाँधे मण्डल के भेद से स्वयं ही रासरूप से प्रकट किया जा रहा था। अतएव वह आनन्दकन्द स्वरूप था तथा तरंगभरे कौतुक से युक्त एवं चमत्कारपूर्ण था, जिसे आज तक किसी भी नट ने प्रकट नहीं किया था, किन्तु मुनि भरत ने हल्लीशक नाम से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोककल्याण हेतु इसका अतिशय अभिनय किया था। उस नृत्यविशेष के द्वारा श्रीकृष्ण गोपियों के मन में विलक्षण आनन्द की सृष्टि करना चाहते थे, सम्पूर्ण जगत् को आश्चर्यचकित करना चाहते थे। दयिता-समाज भी उस समय परम सुन्दर रत्नमाला की मणियों के यश की पताकाओं के समूह के समान शोभायमान था, ऐसे प्राणप्रिय गोपी-समाज से श्रीकृष्ण ने कहा ॥ ३ ॥

शृणु तावदयि दयितामण्डल मण्डलतया स्थीयतामास्थीयतां चानन्दकारिणि मदुदिते ॥ ४ ॥

हे प्राणप्रिय वनिता वृन्द ! आप पहले मण्डलाकार खड़े हो जायँ और मैं जो कह रहा हूँ उन आनन्ददायक बातों को आस्था से सुनें ॥ ४ ॥

इदमतिप्रकृष्ट कृष्टमदीकृतघनसारसार केदारसदृशमति विसारितरंसारितरंहसा रामणीयकेन यमुनयानया नयादिव प्रकाशितं निरङ्कुशकुशलसमयं स्वहृदयमिव पुलिनमवलोक्य, मण्डलीभूय भूयसीषु भवतीषु स्थितवतीषु स्थितमस्य विलोकयितुं युज्यते, भवतीनां परिमण्डलोऽत्र माति न वेति ॥५॥

यमुना का यह पुलिन, जिसकी कठोरता पीस पीस कर दूर कर दी गयी है और जो कर्पूर के चूर्ण की तरह दिखायी देने लगा है, क्रीड़ा की तीव्र इच्छा जाग्रत कर रहा है। यमुना नदी द्वारा प्रेम से प्रकाशित इस पुलिन में किसी प्रकार का अमंगल नहीं है, जैसे उसने निरंकुश, कुशलमय अपना हृदय ही प्रकट कर दिया हो। इस बालुकामय तट को देखकर आप सब व्रजवनिताएँ मण्डलाकार खड़ी रहें तो आपका यह परिमण्डल इस पुलिन में रह सकता या समा सकता है या नहीं, यह आजमाकर देखना चाहिए ॥ ५ ॥

तत अचिरेऽचिरेणैव ताः प्रभाप्रभावजितकुवलय वलयसदृशाऽवस्थानेन स्थाने न भवति भवद्दूरवर्त्तित्वमस्माकं स्माकम्पते हृदयं नापरं दूरीभवितुमुत्सहामहे सहामहे नापरं दुःखमिति ॥ ६ ॥

उसके बाद उन गोपियों ने झट से कहा,—अपनी कान्ति के सामर्थ्य से नीलकमलों की वर्तुलाकार माला के सदृश जिनकी रचना है, ऐसे हम लोगों का तुमसे दूर रहना उचित नहीं है, हम दूर रहना नहीं चाहतीं; इस कल्पना से ही हमारा हृदय काँप उठता है। अब इससे अधिक दूसरा दुःख हम सहन करना नहीं चाहतीं ॥ ६ ॥

स पुनरुवाच पश्यत मे शिक्षाकौशलम्। कौशलन्तु (प्राप्नुवन्तु) के तत् यदहमन्तरा वर्तमानोऽपि सरसखेलाविभ्रमभ्रमणलाघवेन सर्वासामेव वो जनं जनं रञ्जयन्, प्रकटमेव सदा निकटवर्त्ती भवामीति तथा गदितेन दितेन सन्देहेन, तदद्भुतावलोकनकनत्कौतुकया च कृष्णमभितोऽभितोषेण परस्पर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करकमलदलकलितबन्धानुबन्धानुक्रमेण क्रमेण मण्डलीभावभावनयापसर्पन्तीनां तनुभिः संभूय भूयस्तया पुलिनमेव विसारितरं तरङ्गपटलीभिरिव चन्द्रिकाम्भोनिधेरानशे ॥ ७॥

• फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—मेरी शिक्षा, मेरे ज्ञान का कौशल देखिये। इस कौशल (चातुर्य) को पृथिवी में कौन प्राप्त कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं। मैं तुम सबके मण्डल के बीच खड़ा होते हुए भी अत्यन्त रसमय क्रीड़ा के परिभ्रमण में विलासमय लाघव दिखाता हुआ, आप सबमें से प्रत्येक को अनुरञ्जित करता हुआ प्रत्यक्ष रूप से रहूँगा। इस प्रकार का कथन सुनकर व्रजाङ्गनाओं का संशय दूर हुआ और इस अद्भुत बात को प्रत्यक्ष देखने, अकेले कृष्ण के हर समय प्रत्येक गोपी के पास रहने को देखने के कुतूहल से निःसन्दिग्ध होकर आनन्द के साथ कृष्ण की चारों ओर परस्पर करकमलों को ग्रथित कर बन्धानुबन्ध क्रम से मण्डलाकार बनने की भावना से पीछे हटती हुई व्रजाङ्गनाओं के शरीर का स्पर्श करती हुई चन्द्रमा की प्रभा ने सागर से निकलनेवाली तरङ्गों की माला की तरह इस प्रशस्त यमुनापुलिन को व्याप्त कर लिया ॥ ७ ॥

ततश्च तत्कृष्णमनोरथतरोर्महामूलस्य, लस्यमानप्रणयसुधासेकसलिलनिर्गमनिवारि कनकालबालमिव ॥ ८ ॥

उसके बाद श्रीकृष्ण के मनोरथ रूपी महावृक्ष का जो बड़ा मूल (मनोरथ रूपी वृक्ष का महामूल) है, उसमें सिञ्चन किये जाने वाले अभीष्ट प्रेम रूपी अमृत जल के बाहर निकलने के मार्ग को रोकने वाला जैसा सुवर्णनिर्मित आलवाल (पानी रखने या रोकने के लिए वृक्ष के तल में बनायी जाने वाली जगह) है, वैसा ही रमणीमण्डल शोभायमान था। बीच में श्रीकृष्ण वृक्ष की तरह हैं और वर्तुलाकार गोपाङ्गनाएँ मानो स्वर्ण आलवाल हैं ॥ ८ ॥

कृष्णमहामदकलभवन्दीकरणाय विलासरससम्राजा वितानितं कनकवागुरावलयमिव ॥ ९ ॥

श्रीकृष्णरूपी महामदोन्मत्त हाथी को पकड़ने के लिए विलासरूपी रस के सम्राट (सार्वभौम राजा) द्वारा विस्तारित शृङ्गार जैसे स्वर्णनिर्मित जाल हो, रमणीमण्डल इस प्रकार शोभायमान था ॥ ९ ॥

कृष्णमनोमीनग्रहाग्रहाकुलेन कुसुमशरजालिकेन विस्तारितं, कुचकोरकतुम्बीफलफलितलालित्यं वलयाकृति काञ्चनजालमिव ॥ १० ॥

श्रीकृष्ण के मनोरूप मत्स्य को पकड़ने के अत्याग्रह से व्याकुल मदनरूप धीवर (जालिक) द्वारा फैलाया हुआ स्तनकलिका रूप यह वर्तुलाकार सुवर्णमय जाल है, जिसमें तुम्बीफल सुन्दरता के साथ लगे हैं ॥ १० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णदुर्गमताकारि वदनतुहिनकिरणबिम्बनिकरकनककुम्भविशेषशोभमानं चपलवेणिदण्डतिमिरपताककाकुलाकुलायमानं कौमुदीदुर्गमिव । ११ ।

श्रीकृष्ण निकलकर बाहर न जा सकें, इसके लिए (रमणीमण्डल) मानो चन्द्रिका से बना किला हैं, जिसमें विशेष प्रकार के सुवर्णकुम्भ शोभायमान हैं जिन पर मुखरूपी चन्द्रविम्ब बैठाये गये हैं, (रमणियों की) हिलने वाली वेणियाँ दण्डरूप हैं, जिनके ऊपर कृष्णवर्ण केशकलाप रूपी पताकाएँ लगायी गयी हैं ॥ ११ ॥

भुवलयविलासलक्ष्म्या विलासकनकमहाताटङ्क मण्डलमिव ॥ १२ ॥

वह रमणीमण्डल ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे भूमण्डल के विलास रूपी लक्ष्मी के विलास के लिए धारण करने का सुवर्ण का महाताटङ्करूप कर्णभूषण हो ॥ १२ ॥

मिहिरदुहितृपुलिनलक्ष्म्या वक्षसो वलयाकारं चम्पकमाल्यमिव ॥१३॥

यह रमणीमण्डल सूर्यकन्या यमुना के वालुकामय प्रदेश की सौन्दर्यलक्ष्मी के वक्ष-स्थल पर विराजमान चम्पक पुष्पों की वर्तुलाकार माला की तरह है ॥ १३ ॥

कृष्णरत्नसानुमभितः कनकमय मानसोत्तरगिरिवरवलयमिव ॥ १४ ॥

श्रीकृष्ण रूपी सुमेरु पर्वत है, जिस पर रत्नमय शिखर हैं, उसके उत्तर प्रान्त में जो सुवर्णमय पर्वत का भाग है जिस पर मानस सरोवर है, वही वलयाकार रूप में जैसे (रमणीमण्डल के रूप में) प्रतिभासित है ॥ १४ ॥

सम्पूर्णमहसः कृष्णकलानिधेर्महापरिधिरिव ॥ १५ ॥

सकलकला से परिपूर्ण श्रीकृष्ण चन्द्र के चारों ओर होने वाली वह (रमणी-मण्डल) महापरिधि (वर्तुलाकार तेजोवलय) हो ॥ १५ ॥

रतिरसकलाकलापकुलालस्य लालस्यमाननटनघटघटनाचक्रमिव । १६ ।

रतिक्रीड़ा के रस की सब कलाओं के निर्माता कुलाल यानी कुम्भकार श्रीकृष्ण के शोभायमान नृत्यरूपी घटों की निर्मिति का मानो चक्र हो ॥ १६ ॥

यमुनापुलिनकर्पूरकेदारतलतो निर्बीजमेव तत्समयसमुद्भिन्नं, परस्पर-शाखाग्रसंश्लेषविशेषदर्शनीयं हिमकणगणगुणितशोभम्, वलयाकारं कनक-कल्पलतानिकुरम्बमिव ॥ १७ ॥

यमुना का पुलिन (बालुकामय प्रदेश) कर्पूर चूर्ण से भरे हुए क्षेत्र के अन्दर से बीज न होते हुए भी तत्क्षण अंकुरित एवं शाखाओं के अग्रभागों के परस्पर सम्मिलन से अतिदर्शनीय तथा स्वेदबिन्दुरूप बर्फकणों के कारण द्विगुणित शोभा-युक्त वलयाकार कनक कल्पलताओं का मानो समूह हो ॥ १७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चित्रकाव्यमिव सदासुकरसर्वतोभद्रम्, प्रतिलोमानुलोमपादक्रमम्, एकाक्षरचरणं च, सुललितभाषासमं च ॥ १८ ॥

चित्रकाव्य की तरह सर्वतोभद्र (तन्नामककाव्यरचना विशेष) अर्थात् सभी ओर से सुखप्रद और चित्रकाव्य जैसा नृत्य में प्रतिलोमानुलोम पादक्रमयुक्त रमणी-मण्डल है अर्थात् जिस प्रकार एक श्लोक में उन्हीं अक्षरों का उलटा पाठ करने में एक चरण बन जाता है और सीधा पाठ करने से दूसरा चरण, उसी प्रकार गोपीमण्डल का नृत्य कभी उलट और कभी सीधे चरणविन्यास युक्त हो रहा है। चित्रकाव्य में जिस प्रकार एक ही व्यञ्जन से सम्पूर्ण चरण बनता है, उसी प्रकार एकमात्र अक्षर-अविचल है चरण, रमणीमण्डल भी एक समान अस्खलित गति से युक्त है। चित्रकाव्य में जिस प्रकार दो-चार भाषाओं के समान आकार के अथवा रूपवाले शब्द रखकर भाषासम नामक अलंकार बनता है, उसी प्रकार रमणी-मण्डल उक्ति-प्रत्युक्ति रूप वाणी से सम यानी सुन्दर, शोभायमान लग रहा है। ('सर्वसाधुसमानेषु समं स्यादभिधेयवत्' इति मेदिनी) ॥ १८ ॥

शब्दालङ्करणमिव सदाश्लेषम्, छेकवृत्यनुप्रासम्, पुनरुक्तवदाभासभासुरम् ॥ १९ ॥

शब्दालङ्कारों में श्लेष, छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, पुनरुक्तवदाभास आदि होते हैं, उसी प्रकार रमणीमण्डल श्रेष्ठ आलिङ्गन विद्वत्तापूर्ण, वृत्तिका करचरणादि की क्रिया में उत्तम अनुकूल विन्यास, पुनरुक्ति की तरह गतिलाघव के कारण मण्डल एक होते हुए भी दो-तीन रूप में भासता है,' उसी रूप में वह शोभायमान है।१९।

नयनमिव मध्यकृष्णम्, छन्द इव सदा विषमसमभावरमणीयभावम्, रमणीमण्डलामाभाति स्म ॥ २० ॥

नयन के मध्य में जैसे कृष्णवर्ण का तारा होता हैं, उसी प्रकार गोपीमण्डल के बीच श्रीकृष्ण हैं। और जिस प्रकार छन्दशास्त्र में विषमाक्षर के चार या उससे अधिक पाद होते हैं, उसी प्रकार रमणीमण्डल नृत्यगति भेद और पद-विन्यास के समविषम से रमणीय, शोभा युक्त लग रहा है ॥ २० ॥

तस्मिन्नेव समये देव्या योगमायया, तत्समयोचितवेषभूषाभिर्यदलंकृतं तन्न तासां गोचर आसीदपितु कृष्णस्यातिमनोहरमभूदहो तस्याः कृष्णहृदयानुरञ्जकत्वम्, तत्र प्रथममेव रमणीमणीभावेनासामान्यतया मान्यतया च सर्वानुमत्या कृष्णेन सहैव मध्यमध्यवस्थिता वृषभानुपुत्री चित्रीभूता सतीव परितोषवतीं रमणीमण्डलीमालोकयाञ्चकार ॥ २१ ॥

उसी समय देवी योगमाया ने उस प्रसङ्ग के अनुकूल वेषभूषा से सजकर जो सौन्दर्य दिखाया और समस्त मण्डल को जिस प्रकार अलंकृत किया, वह सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गोपियों के गोचर नहीं हुआ, किन्तु श्रीकृष्ण के लिए यह अति रमणीय, मन मोहने वाला, अपूर्व, आश्चर्यजनक था, जिसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ सभी सुन्दर स्त्रियों में श्रेष्ठ, असामान्य वृषभानुसुता श्रीराधा सब गोपियों की अनुमति से कृष्ण के साथ गोपीमण्डल के मध्यभाग में उपस्थित हुई चित्र की तरह, अविचल भाव से अत्यानन्दित व्रजवनितामण्डल का अवलोकन करने लगी ॥ २१ ॥

तदनु सा मण्डली बहुविस्तारभियायाभितशङ्का परस्परसंसक्ततया कविताागतशिथिलबन्धदोषमिव दूरीचिकीर्षुर्गाढं बन्धमङ्गीकर्त्तुमितरेतरेषामंसन्यस्तबाहुमूलं स्थितवती राजति स्म ॥ २२ ॥

उसके पश्चात् गोपी-मण्डली का अधिक विस्तार होने की शङ्का से गोपियाँ इस तरह परस्पर सट कर तथा एक दूसरे के अंस (कंधे) पर अपना बाहुमूल (अंस) रखती हुई खड़ी रही, जिस प्रकार कविता का शिथिलबन्ध रूप दोष दूर करने की इच्छा से जैसे गाढबन्ध की रचना की जाय। इससे इस गोपीमण्डल की शोभा बढ गयी ॥ २२ ॥

तत्र मध्यमध्यवस्थितस्य तस्य रसिकशेखरस्य सारस्यदेन : स्यदेन प्रवेशसमकालमेव मुक्तपरस्परांसतटयोर्द्वयोर्द्वयोर्मध्ये पुरः पश्चाद्भावेन प्रविश्य कण्ठतटं भुजवलयाभ्यामवगृह्य विभ्रमतो भ्रमतोऽलातचक्रमिव तद्भ्रमणं चित्रकाव्यमिव गोमूत्रिकाबन्धप्रायं प्रतिलोमानुलोमक्रमेण भवदत्यद्भुतं तदासीत् ॥ २३ ॥

वहाँ मध्यभाग में स्थित रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण (श्रीराधा को छोड़कर) सरसता के साथ वेग से उस वनितामण्डल के बीच दो-दो के मध्य भाग से एक के आगे एवं दूसरी के पीछे से प्रवेश कर निकलने लगे। श्रीकृष्ण की इस क्रिया के समय स्त्रियाँ परस्पर पकड़ा हुआ स्कन्ध छोड़ देती थीं। प्रवेश कर श्रीकृष्ण अपने हाथ को वलयाकार कर पास की रमणी के गले में डालते और विलास के साथ भ्रमण करते हुए एक को छोड़कर दूसरी गोपी से मिलते हुए अलातचक्र की तरह घूमने लगे (जलता हुआ काष्ठ घुमाने से चक्राकार दिखायी देता है, उसे ही अलातचक्र कहते हैं।) यह परिभ्रमण चित्रकाव्य के गोमूत्रिकाबन्ध की तरह एक के आगे से, दूसरी के पीछे से घूमने के कारण अनुलोम-प्रतिलोम होने से अतिशय आश्चर्यजनक दिखायी देता था ॥ २३ ॥

येन तं सकला एव कलावत्य एव स्वस्वनिकटस्थमेव मन्यन्ते स्म एव तस्य भ्रमणलाघवम् ॥ २४ ॥

इस प्रकार भ्रमण करने से इन सभी कलानिपुण गोपियों ने समझा कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण उनके ही पास परिभ्रमण का विलास दिखा रहे हैं। श्रीकृष्ण के भ्रमण की शीघ्रता इतनी विचित्र थी ॥ २४ ॥

तेन च—

एकस्या दक्षिणांसे वरभुजवलयं वाममन्यं परस्या।
वामांसे न्यस्य गाढं युगपदभिमुखे द्वे समाश्लिष्य कान्ते।
ताभ्यां दत्तप्रवेशस्त्वरितमनुगतः पृष्ठमेकां विमुञ्चन्।
अन्यां गृह्णन् पुरस्तात् स पुनरुपसरत्येवमेव क्रमेण ॥ २५ ॥

श्रीकृष्ण एक गोपी के दक्षिण स्कन्ध पर अपना सुन्दर वाम भुजवलय रखकर और दूसरी के वाम स्कन्ध पर दूसरा बाहु दृढ़ता से रखकर दोनों को एक साथ गाढ आलिङ्गन देकर, उनके द्वारा प्रवेश का स्थान देने पर एक को पृष्ठभाग में छोड़ते हुए दूसरी के पीछे जाकर उसे आगे से पकड़कर फिर दूर जाते हैं। इस क्रम से सबके साथ विलास करते हुए वे भ्रमण पूरा करते हैं॥ २५ ॥

एवं प्रतिलोमानुलोमाभ्यां स्पष्टमेव गोमूत्रिकाबन्धमुपपादयता प्रत्येकमेव तासां पुरःपश्चाद्भागपरिष्वङ्गेण लाघवकौशलेन भ्रमता तासां तस्याश्च मध्यगताया मुख्यायाः परमकौतुकमाततान् ॥ २६ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण ने आगे-पीछे जाने के क्रम से स्पष्ट रूप सं गोमूत्रिकाबन्ध का निर्माण करते हुए प्रत्येक गोपी के अग्र और पश्चात् भाग से आलिङ्गन कर अतिकौशलपूर्वक भ्रमण करते हुए सभी रमणियों और मध्यस्थित श्रीराधा को, जो सभी गोपियों में मुख्य थीं, आश्चर्यचकित कर दिया ॥ २६ ॥

एतस्मिन्नेव समये सुखावलोकनाशया निकटमालम्बितं ज्योतिश्चक्रमिव विमानश्रेणिसङ्कुलमपि निर्विमानं लेखावलिवलितमपि निर्लेखम्, सदा सदारचारणकिन्नरसिद्धसाध्यगन्धर्वविद्याधरप्रभृतिभृतनिरन्तरसमाजं बिभ्रदम्बरतलं रराज ॥ २७ ॥

इसी समय इस आनन्द का अनुभव करने की इच्छा से आकाशस्थ सम्पूर्ण तारकादि ज्योतिर्मण्डल ही जैसे ऊपर के भाग में आया हो, ऐसा वह देवमण्डली से युक्त विमानों की पङ्क्तियों से चारों ओर घिरा हुआ था, जिनकी गणना नहीं की जा सकती। चारण, सिद्ध, विद्याधर, किन्नर, साध्य, गन्धर्व आदि देवयोनियों के लोग अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ थे। इस बड़े समुदाय के आकाश में व्याप्त होने से आकाश शोभा पाने लगा ॥ २७ ॥

ततश्च चित्रकाव्यमिव ललितमुरजबन्धं पार्थिवशङ्करकदम्बमिव निर्दोषमृदङ्गं, क्रयविक्रयशीलनमिव पणवाहितं, बन्धुजनवपुरिव ललितालिङ्गचम्, नाटकमिव विलसदङ्क्यं, यदुकुलमिव श्लाघ्यतमानकदुन्दुभि, गग-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नमिव विततं, वर्षानभ इव सुघनं, सूचीमूलमिव ससुषिरं, महारत्नमिव सदानद्धं देवताभिवाद्यं वाद्यं नदति स्म ।। २८ ।।

उसके बाद, वाद्य-वादन होने लगा। चित्रकाव्य में जैसे सुन्दर मुरजबन्ध होते हैं (मुरज एक काष्ठनिर्मित एवं दोनों प्रान्त चर्माच्छादित वाद्य है, उसके आकार की तरह रचना जिसमें हो, उस श्लोक को चित्रकाव्य का एक प्रकार माना जाता है), वैसे ही यहाँ वाद्यों में मुरज सुन्दर थे। पार्थिव शिवलिङ्ग-पूजा में जिस प्रकार मिट्टी के लिङ्ग बनाये जाते हैं, उसी प्रकार यहाँ मृदङ्ग थे। वणिक जिस प्रकार क्रय-विक्रय में पणों (पैसों) से व्यग्र रहते हैं, उसी प्रकार यहाँ पणव नामक वाद्य बज रहा था। प्रिय बन्धु का शरीर जिस प्रकार सुन्दर रीति से आलिङ्गन के योग्य होता है, उसी प्रकार यहाँ ललिताङ्ग्य यानी सुन्दर आलिङ्ग्य नामक चर्म वाद्य था। नाटक में जिस प्रकार सुन्दर अङ्क होते हैं, उसी प्रकार यहाँ अङ्क्य नामक चर्मवाद्य था। यदुकुल में जिस प्रकार परम प्रशंसनीय आनकदुन्दुभि (वसुदेव) हुए, उसी प्रकार यहाँ भी आनकदुन्दुभि वाद्य था। गगन वितत (विस्तृत) होता है, यहाँ भी विशेष प्रकार के तन्तुवाद्य थे। वर्षा-कालीन आकाश जिस प्रकार सुन्दर घनों (मेघों) से युक्त होता है, उसी प्रकार यह स्थल भी सुन्दर घनों (कांस्यवाद्यों) से युक्त था। सूई का मूल भाग जिस प्रकार छिद्रयुक्त होता है, उसी प्रकार यहाँ भी वंशादि छिद्रवाद्य थे। महारत्न सदानद्ध होते हैं, यानी सज्जन उन्हें धारण करते हैं, उसी प्रकार यह सदानद्ध, चमड़े से बँधे वाद्यों से युक्त था। यहाँ देवताओं के लिए भी दुर्लभ वाद्य बज रहे थे ।। २८ ।।

नन्दनवनवनदेवताभिरेव व्राभिरेवमनवरतं वृष्यमाणानि समधुकराणि दिवः साञ्जनहर्षनयनजलबिन्दुनिकुरम्बाणीव निपतन्ति स्म कुसुमानि यशो यशोदानन्दनस्य तस्य ललितकलस्वरं स्वरङ्गनाभिः सह सहर्षं गन्धर्वाश्च गायन्ति स्म। ततश्च, मुखरनूपुरकङ्कणकिङ्किणीकलकलः सुदृशां च हरेश्च सः। समकिरद्रसनारसनाशनः श्रवणयोरमृतान्यमृतान्धसाम् ।। २९ ।।

नन्दनवन की वनदेवियाँ ही जैसे प्रत्यक्ष वहाँ आ गयी हों, ऐसी दिखायी देने वाली उन सुन्दर गोपाङ्गनाओं ने सतत पुष्पवर्षा की। उन फूलों पर भँवरे बैठे हुए थे। ऐसा लगता था मानो वे फूल ऊपर से गिरते समय स्वर्ग-देवियों के कज्जल-युक्त नेत्रों के आनन्दाश्रु एकत्र कर गिर रहे हैं। देवाङ्गनाओं के साथ गन्धर्वगण यशोदानन्दन श्रीकृष्ण का यश सुमधुर स्वर में गाते थे। गोपियों और श्रीकृष्ण के नूपुर, कङ्कण और गहनों से कलकल नाद मुखरित हो रहा था। उससे अमृत-प्राशन करनेवाले देवों के कानों में अमृत-रुचि को तुच्छ करने वाले अमृत की वर्षा होने लगी ।। २९ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततश्च ।

तस्यैवं भ्रमतो जवेन सुदृशां द्वे द्वे समालिङ्गतो ।
मध्यं मध्यमनुप्रविश्य वपुषा तेनैव सा मण्डली ॥
किं ज्योत्स्नातिमिरैः किमु स्थिरतडिन्मेघैरथो चम्पक-।
श्यामाब्जैरुत काञ्चनेन्द्रमणिभिः क्लृप्तामजैषीत् स्रजम् ॥ ३० ॥

इस प्रकार वेग से भ्रमण करने वाले और उन सुन्दर दृष्टियुक्त स्त्रियों के बीच में से दो-दो को एक साथ आलिङ्गन देते हुए सब के बीच प्रवेश करने वाले श्रीकृष्ण के उस शरीर से उस वनितामण्डलने चन्द्र-प्रकाश और अन्धकार, अथवा मेघ-बिजली, अथवा नीलकुसुम और सुवर्ण चम्पक, अथवा इन्द्रनील मणि और सुवर्ण से बनायी हुई माला की शोभा को मानो जीत लिया ॥ ३० ॥

कदाचिदपि तथाविध गोमूत्रिकाबन्धं विहाय स्वच्छभूमावेव चक्राकारचित्र-काव्यमिव नर्तनमावर्त्तयति । तद्यथा—

वल्गद्वल्गुवतं समं सविलसन्मन्दारमालं नदत् ।
काञ्चीकिङ्किणिकङ्कणादिविगलत् संख्यानकं भ्राम्यति ॥
विष्वद्रीचि मरीचिवीचिनिचये जीमूतचक्राकृतौ ।
सर्वाः पुप्लुविरे स्थिरा नवतडिन्माला इवैणी दृशः ॥ ३१ ॥

कभी-कभी वह नर्तकमण्डल गोमूत्रिकाबन्ध को छोड़कर स्वच्छ भूमि पर चित्र-काव्य की तरह चक्राकार नर्तन करने लगा । उस समय उन्होंने अपने-अपने स्कन्धों पर मन्दर मालाएँ धारण की थीं । सुन्दर भूषणों के मधुर शब्द होते थे । कमर की मेखलाओं की क्षुद्र घण्टिकाओं का नाद होता था । उत्तरीय वस्त्र गिर पड़ते थे । चारों ओर उनकी तेज किरणों का प्रकाश फैला था । श्रीकृष्ण की श्याम-किरण रूप तरङ्गों में सब अङ्गनाएं नव बिजली की माला की तरह तैरने लगीं, हरिणी की तरह उनके नेत्र चमक रहे थे ॥ ३१ ॥

ततश्चातिचित्रम्—

ह्रस्वावर्ते सरति सरसं राधिकामन्तरस्थाम् ।
दीर्घावर्ते निकटमयते मण्डलीस्थप्रियाणाम् ॥
नुन्नो वेगान्मरकतमयः सूत्रबन्धप्रमुक्तो ।
लीलाचक्रीपुट इव हरिर्विभ्रमी बंभ्रमीति ॥३२॥

इसके पश्चात् अत्यन्त आश्चर्यजनक रूप यह था कि यह चक्राकार नृत्य जैसे चक्रभ्रमिनाट्य में अन्तर्बहिर्गोलरूप से दो नीलमणियों का मण्डल ही हो । श्रीकृष्ण अन्दर के छोटे गोल में श्रीराधा के पीछे प्रेम से घूमते-घूमते बाहर के बड़े गोला-कार में रहने वाली प्रिय गोपियों के पास जाते हैं । उस समय इतने वेग से स्थला-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्तर करते हुए पूर्वस्थल पर पुनः अन्य स्थल पर श्रीकृष्ण के जाने से ऐसा लगता है कि नीलमणियों का सूत्रबद्ध हार ही वेग से दोनों गोलाकारों में चक्राकार घूम रहा है। श्रीहरि का यह अतिविलास के साथ परिभ्रमण था ॥ ३२ ॥

ततस्तदवेक्षणेन तासामपि मनसि समुदि, समुदितायां निर्नतिषायां तत्क्षणादेवदेवताभिस्तौर्यत्रिकाधिष्ठात्रीभिस्तनमतीभिरुपतस्थे ॥ ३३ ॥

उसके बाद यह देखकर कि देवताओं के प्रमुदित, आनन्दित मन में भी नृत्य की लालसा जाग उठी है, तौर्यत्रिक यानी गीत-वाद्य-नर्तन की अधिष्ठात्री देवियाँ भी मूर्त होकर सुन्दर रूप में वहाँ उपस्थित हुईं ॥ ३३ ॥

तथा सति नृत्यगीतवाद्याध्यायोपाध्यायोपासितचरणास्ताः पूर्वपूर्वतरसुचिराभ्यासाभ्यासादितकौशलमिवात्मानं प्रत्येकमेवमन्यमानान्यमानानन्दवृत्तिमासाद्य ॥ ३४ ॥

ऐसा होने पर नृत्य-गीत-वाद्य के निष्णात आचार्य की जिन्होंने चरण-सेवा की है और पूर्वातिपूर्वकाल से बहुत समय तक जिन्होंने अभ्यास कर कौशल्य सम्पादन किया है, उन कलाओं में अपने को निष्णात मानने वाली वे अपरिमित आनन्दमय वृत्ति-प्राप्त मान रही थीं ॥ ३४ ॥

धनिकमणिकमनीयगृहपटलीमिव ललितपताकाम् ॥ ३५ ॥
होमधूमावलिमिव सत्रिपताकाम् ॥ ३६ ॥
मृणालवल्लीमिव हंसास्यलुलिताम् ॥ ३७ ॥
द्वितीयाचन्द्रलेखामिव कर्तरीमुखशोभाम् ॥ ३८ ॥
पलाशकुसुमश्रेणिमिव शुकतुण्डाभाम् ॥ ३९ ॥
तप्तसुवर्णादिसूत्रावलिमिव संदंशाकृष्टाम् ॥ ४० ॥
हरमूर्तिमिव विलसत्खटकामुखाम् ॥ ४१ ॥
मधुकरश्रेणीमिव पद्मकोषोत्कण्ठिताम् ॥ ४२ ॥
अहितुण्डिकव्यवर्सितिमिव खेल्यमानाहितुण्डाम् ॥ ४३ ॥
सीवनशिल्पकलामिव सदोपयुक्तसूचीमुखाम् ॥ ४४ ॥
मार्गशीर्षपूर्णिमामिव मृगशीर्षयुक्ताम् ॥ ४५ ॥
अष्टमीतिथिमिव विलसदर्धचन्द्राम् ॥ ४६ ॥

किंबहुना कार्तवीर्यमूर्तिमिव विशुद्ध सहस्रहस्तां हस्ताध्यायदेवतामनुगृह्य तदनुगामिनीं चच्चत्पुटचाचपुटहंसलीलगजलीलसिंहनन्दनादिमहातालैरादितालैकतालीरूपकप्रतिमण्ठनिसारु यति त्रिपुटाड्डुकप्रभृतिभिरपरैश्च तदितरैः ॥ ४७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हरविलासस्वरार्थादिस्वरपाठविरुदादिवलितनानाप्रबन्धध्रुवगानदेवतां द्रविडतैलङ्गपाश्चात्यादिदेशीयगानदेवतां च ॥ ४८ ॥

श्रेष्ठ धनिकों के सुन्दर गृह के ऊपर के भाग की तरह सुन्दर पताका विराज रही है ॥ ३५ ॥

यज्ञ के धूम की पंक्ति की तरह वह हस्ताध्याय-देवता त्रिपताका के सहित है ॥ ३६ ॥

कमल की लता की तरह वह हंसास्य से शोभायमान है (हंस मुख से लता हिलायी जाती है और नृत्य में हंसास्य हस्त है) ॥ ३७ ॥

द्वितीया तिथि के चन्द्र की तरह कर्तरीमुख से वह सुशोभित है ॥ ३८ ॥

पलाशवृक्ष के फूलों की तरह वह शुकतुण्ड से सुशोभित है ॥ ३९ ॥

तपे हुए सुवर्ण आदि की माला की तरह संदंश नामक हस्तक से आकृष्ट-सुशोभित है ॥ ४० ॥

शिवमूर्ति की तरह जिसमें खटका वाद्य सुशोभित रहता है, वह खटकामुख हस्तक से शोभायमान है ॥ ४१ ॥

भ्रमरों की पंक्ति की तरह वह पद्मकोश हस्तक से उत्कण्ठित हो रही है ॥ ४२ ॥

गारुडविद्या जाननेवाले की तरह, जिसमें सर्पमुख (अहितुण्ड) से खेल हो रहा है, वह भी अहितुण्डिक हस्तक से खेलती हुई आ रही है ॥ ४३ ॥

वस्त्र सीने की कला की तरह, जिसमें सुई के मुख का सतत प्रयोग होता है, उसी प्रकार वह सूचीमुख हस्तक का प्रयोग करने वाली है ॥ ४४ ॥

मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा में जिस प्रकार मृगशीर्ष यानी मृगशिरा नक्षत्र रहता है, उसी तरह वह मृगशीर्ष नामक हस्तक युक्त है ॥ ४५ ॥

अष्टमी तिथि को अर्धचन्द्र जिस प्रकार शोभायमान रहता है, उसी प्रकार वह अर्धचन्द्र नामक हस्तक से सुशोभित है ॥ ४६ ॥

विशेष वर्णन का क्या प्रयोजन है ? कार्तवीर्य अर्जुन की मूर्ति जिस प्रकार हजार सुन्दर हाथों से युक्त है, उसी प्रकार हस्ताध्याय-देवता भी हजारों प्रकार के विशुद्ध हस्तकों से युक्त थी। उस हस्ताध्याय की देवता और उसकी अनुगामिनी चच्चत्पुट, चाचपुट, हंसलील, गजलील, सिंहनन्दन आदि महातालों के साथ आदिताल, एकताली, रूपक, प्रतिमण्ठ, निःसारु, त्रिपुट, अड्डुक आदि दूसरी तालों के साथ तथा महातालों से दूसरे छोटे-छोटे तालों के साथ, और हरविलास, स्वरार्थ आदि स्वरपाठ, विरुद आदि से युक्त अनेक प्रबन्धों एवं द्रविड़, तैलङ्ग, पाश्चात्य आदि देशी गान देवता पर भी अधिष्ठात्री देवियों ने कृपा कर दी ॥ ४७-४८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मालवमल्लारभैरवकेदारसारङ्गनटकर्णाटकामोदसामदेशागगान्धारबङ्गालवसन्तादिरागनिकरगुर्जरीबहुलगुर्जरीवाराटीदेशिकाभैरवीवेलावलीरामकिरिधन्नासिकाश्रीपालीगौरीतोडी गौण्डकिरिकल्याणिकापौरवीसैन्धवीशोभनवत्याशावरीदेशवराडीगोडापठमञ्जरीललिता देवकीमागधी कौशिकीप्रभृतिरागरागिणीगणदेवतां च सप्तस्वरैकविंशतिमूर्छनाग्रामत्रय जात्यष्टादशकश्रुतिद्वाविंशतिकमातुधातुदेवतां चेति गानाध्यायलक्ष्मीं मूर्तिमतीं चानुकम्प्य।। ४९ ।।

मालव, मल्लार, भैरव, केदार, सारङ्ग, नट, कर्णाट, कामोद, साम, देशाग, गान्धार, बङ्गाल, वसन्त आदि रागों के समूह एवं गुर्जरी, बहुलगुर्जरी, वराटी, देशिका, भैरवी, वेलावली, रामकिरी, धन्नासिका, श्री, पाली, गौरी, तोड़ी, गौण्डकिरी, कल्याणी, पौरवी, सैन्धवी, शोभनवती, आशावरी, देश वराडी, गौंडा, पठमञ्जरी, ललिता, देवक्री, मागधी, कौशिकी प्रभृति रागिणियों की देवियों के ऊपर भी उन अधिष्ठात्री देवियों ने कृपा की। तथा इन अधिष्ठात्री देवियों ने सात स्वरों, इक्कीस मूर्च्छनाओं, तीन ग्रामों, अठारह जातियों, बाईस श्रुतियों एवं मातु-धातु-देवताओं तथा मूर्तिमती गानाध्याय रूप देवी पर भी अनुग्रह किया ।। ४९ ।।

वंशीमुरलिकापाविकोपाङ्गादिविविध सुषिरं, वीणामहतीकविलासिकाविपञ्चीस्वरमण्डलिकाकच्छपीरुद्रवीणाकिन्नरीप्रभृति ततवितति मृदुमृदङ्गडमरु डम्फादि विविधानद्धं मन्दिरादिधनम् चेति चतुर्विधवाद्याध्याय देवतां च ।। ५० ।।

वंशी, मुरली, पाविक, उपाङ्ग आदि विविध सुषिर वाद्यों, वीणा, महती, कविलासिका, विपञ्ची, स्वरमण्डल, कच्छपी, रुद्रवीणा, किन्नरी प्रभृति ततवाद्यों, मृदु मृदङ्ग, डमरु, डंफ आदि विविध आनद्ध वाद्यों, मन्दिरा आदि घन वाद्यों; ऐसे चतुर्विध वाद्य-देवताओं पर भी अनुग्रह किया ।। ५० ।।

द्रुतविलम्बितमध्यलयलक्ष्मीमङ्गहारश्रियं च स्वयमागतामनुजगृहुः ।। ५१ ।।

द्रुत, विलम्बित एवं मध्य लय और अङ्गहारादि की शोभादेवियों के ऊपर (स्वयं उपस्थित होकर) अनुग्रह किया ।। ५१ ।।

ततश्च तासामेव मध्ये स्वरमण्डलिकां विपञ्चिकां महतीं रूपवतीं च तुम्बुरीम्। कविलासिकया समं समादधतीभिः कियतीभिरुद्यये ।। ५२ ।।

उसके बाद उन अधिष्ठात्री देवियों के बीच स्वरमण्डल, विपञ्ची, महती, रूपवती, तुम्बुरी, कविलासिका वीणाएँ धारण करती हुई कई देवियाँ प्रकट हुईं ।। ५२ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततश्च, मूर्ताः संगीतशास्त्रोपनिषद् इव ताश्चित्रमेवाविरासन्नासन्ने रासलीलारहसि सहसित श्रीमुखाम्भोजकोशाः। वैणिक्यो वैणविक्यः सरसमुदभवन् मौरजिक्या समेता गायन्यस्तालधारिण्यपि करकलितोपाङ्गमौपाङ्गकी च ॥ ५३ ॥

उसके पश्चात् संगीतशास्त्र रूपी उपनिषद का मानो शरीर धारण कर आयीं मूर्तिमती देवियाँ सबको आश्चर्य चकित करती हुई प्रकट हुईं। उस रासलीला के निकटवर्ती होते ही उन देवियों के मुखारविन्दों के कोश हास्ययुक्त थे। वीणा, वेणु, मुरज बजाने वाली देवियों के साथ गायन करने वाली देवियाँ भी बड़े प्रेम से उपस्थित हुईं। ताल धारण करने वाली के साथ वाद्यों के उपाङ्ग धारण करने स्त्री भी आयीं ॥ ५३ ॥

वाग्गेयकारकगुणैरुपलक्षितानां ।
सङ्गीततन्त्ररहसामपि पारगाणाम् ॥
शुद्धाङ्गशुद्धतरकर्कशमार्गलास्य—।
नेत्री व्यरोचत ततिर्वरनर्तकीनाम् ॥ ५४॥

वाणी और गायन की ज्ञाता, काव्यगुणसम्पन्न, संगीतशास्त्र के रहस्यों में पारंगत और शुद्धातिशुद्ध कठिनतर मार्ग (शास्त्रीय), लास्य के अङ्गोपाङ्गों को जाननेवाली और उस पर अधिकार रखनेवाली श्रेष्ठ नर्तकियों की पंक्ति शोभायमान हुईं ॥ ५४ ॥

तत्र च, गीतं द्वेधा, मार्गदेशीयभेदात्, त्रिंशच्चत्वारश्च मार्गप्रभेदाः। तेषां तालाः पञ्च, चच्चत्पुटाद्याश्चत्वारिंशद् द्वौ च देश्यां प्रसिद्धाः ॥५५॥

और, मार्ग और देशी भेद से गीत दो प्रकार का होता है। मार्ग के चौंतीस (३४) प्रभेद हैं। उनके ताल पाँच (चच्चत्पुट, चाचपुट, षट्पितापुत्रक, संपक्वेष्टक, उद्घट्ट) हैं और देशी गीत में बयालीस (४२) भेद प्रसिद्ध हैं ॥ ५५ ॥

ततश्चतालपाठः स्वयमुल्ललास। थैया, तथतथथैया तथतथथैयातथत्तितथथैया। थैया तथतथथैया थगथगथगतत्तिथदिगणथैः।

ततश्चैनं शब्दं गृहीत्वा—'स्वरं लघुगुरुप्लुतद्रुतविरामसात्राविधौ' सशब्दकमशब्दकं कलितकांस्यतालोत्तमम्। कराब्जमपसव्यसव्यत उपर्यधो निक्षिपन्त्यथाष्टममुपारटत् किमपि तालधारिण्यसौ ॥ ५६ ॥

इसके बाद ताल-पाठ स्वयं उल्लसित, प्रकट हुआ। वह इस प्रकार था—थैया तथ तथ थैया, तथ तथ थैया, तथत्ति, तथ थैया, थैया तथ तथ थैया, थग थग थग तत्तिथ दिगणथैं आदि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके बाद ताल-पाठ के उसी शब्द को ग्रहण कर तालधारिणी ने लघु-गुरु-प्लुतादि स्वर को सशब्द-निःशब्द क्रियाओं से दिखाते हुए हाथ में कांस्य के उत्तम ताल धारण कर अपने करकमलों को ऊपर नीचे फेंकती हुई अष्टम की रटना शुरू की (ऐसा लगने लगा जैसे षड्जादि सप्तस्वर की तरह उसका ताल भी अष्टम स्वर हो) ॥ ५६ ॥

ततश्च—

शब्दास्ते मौरजिक्या मुरजवरमुखे पाणिनोद्घाट्यमानाः।
औपाङ्गिक्याप्युपाङ्गं स्फुरदधरदलं निन्यिरे कम्प्रकण्ठम् ॥
गायन्त्यो रागराजीः समयसमुचिता हुंक्रियाभिः कलाभिः।
यन्त्रे झङ्कारयन्तोऽखिलरवमिलने दत्तकर्णा विरेजुः ॥ ५७ ॥

वहाँ मृदङ्ग बजाने वाली मधुर मुख से हाथ से जो शब्द निकालती थी, उपाङ्गों का अभिनय करने वाली अधरोष्ठ के स्फुरण और कण्ठ के कम्पन के साथ उपाङ्गों से भी उन्हीं शब्दों को प्रकट करती थी। गाने वाली रमणियाँ अव्यक्त हुंकारों के साथ अनेक रागों को समयानुकूल पद्धति से अपने ध्वनियन्त्र से झङ्कृत करती हुई सब शब्दों के मेलन में दत्तचित्त होकर सुशोभित हुई ॥ ५७ ॥

सप्तस्वराः सदनुवादिविवादिवादिसंवादिनः स्थलवशेन चतुर्विभेदाः। ताश्चैकविंशतिरपि श्रुतयो यथास्वं ग्रामास्त्रयः श्रुतिसमा अथ मूर्छनाश्च ॥ ५८ ॥

स्वर सात हैं, जिनके स्थलविशेषवश चार भेद हैं, यथा—अनुवादी, विवादी, वादी और संवादी। उनकी श्रुतियाँ इक्कीस हैं (श्रुतियाँ बाईस होती हैं)। ग्राम तीन हैं, मूर्च्छनाएँ इक्कीस हैं। ये सभी मूर्त होकर प्रकट हुए ॥ ५८ ॥

त्रिलक्षी तानानां नवशतयुतैः सप्तदशभिः।
सहस्रैर्युक्ताष्टादश परिचिता जातिरपि च।
त्रिधा रागाः पञ्चादशथ परिपूर्णादिभिदया।
विशुद्धाः सङ्कीर्णा अपि बहुविधाः प्रादुरभवन् ॥ ५९ ॥

उनचास तानें प्रसिद्ध हैं, किन्तु यहाँ उनकी संख्या तीन लाख कही गयी है। 'मूर्च्छना एव तानाः स्युः शुद्धा आरोहणं श्रिताः। तेषां भूरितरा भेदाः कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति'— ऐसा वर्णन होने से वे अनन्त हैं। यह संख्या है—३१७९१८। ये सब तानें, अठारह प्रकार की सत्रह हजार नौ सौ भेदों की जातियाँ, तीन प्रकार के राग—तीन मुख्य और पचास उपभेदों से विशुद्ध, संकीर्ण, परिपूर्ण भेदों सें युक्त राग—वहाँ प्रकट हुए ॥ ५९ ॥

तत्र—श्रुतिजातिमूर्च्छनानां गमकानां चापि पञ्चदशकानाम्।
व्यक्तिर्न कण्ठतट इति विधिना विहिते चलाचले वीणे ॥ ६० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रुति, जाति, मूर्च्छना, पन्द्रह गमकों (स्वरस्य कम्पो गमकः) की अभिव्यक्ति कण्ठ से पूर्णतया नहीं होती, अतः ब्रह्मा ने चला और अचला दो वीणाएँ बनायीं। (स्वराणां चालनाद्वीणा चलवीणेति कथ्यते । अचला शुद्धविकृतस्वरैर्युक्तात्र संमता) ॥ ६० ॥

चित्रं चित्रमहो महद्दिह् रासारम्भलीलायाम् ।
कण्ठैरेव हि तासां तयोः परीक्षा परस्परं चक्रे ॥ ६१ ॥

यहाँ रासलीला के आरम्भ में महान आश्चर्य यह हुआ कि उन चला-अचला वीणाओं की परीक्षा गोपियों ने कण्ठ से की और वीणाओं ने भी उन गोपियों के कण्ठ की परीक्षा ली । गोपियों का कण्ठ ब्रह्म सृष्टि से भी परे थे ॥ ६१ ॥

ततश्च—
आदिर्यतिर्निसारुस्तथाऽड्डुतालस्तथा त्रिपुटसंज्ञः ।
रूपकझम्पकमण्ठास्तथैकताली च रञ्जकः सूडः ॥ ६२ ॥

[सूड नामक प्रबन्ध के लक्षण मतभेद के कारण अनेक हैं, अतः स्वयं उसका लक्षणकहते हैं] आदि, यति, निःसारु, अड्डुताल, त्रिपुट, रूपक, झम्पक, मण्ठ, एकताली, इन नौ तालों से सूड होता है । (यह रञ्जक होता है) ॥ ६२ ॥

ध्रुवलक्षणमण्ठलेक्षणावथ सूडावपि शुद्धसालगौ ।
विविधा विषमा गतिस्ययोस्तत एतावपि रेजतुस्तदा ॥ ६३ ॥

जिनमें ध्रुव के लक्षण हैं, मण्ठ के लक्षण हैं, ऐसे शुद्ध सालग दोनों सूड गोपियों के कण्ठ से शोभा पाने लगे । उनकी विविध विषम गति भी उस समय प्रकट हुई और सुशोभित हुई । (टीकाः लगता है रत्नाकरोक्त शुद्ध-सालग सूड के लक्षण से ग्रंथकार सम्मत नहीं है ॥ ६३ ॥

ततश्च प्रबन्धगानानुबन्धे—
थै थै थै थै तिगडतिगथै थेति पाठानुकृत्या ।
विन्यस्यन्त्यो भुवि पदतलं दोर्लतामन्तरिक्षे ॥
वामावर्ते सकृदथसकृद्दक्षिणावर्त एवम् ।
नृत्यन्त्यस्ताः सरसमधुरं मण्डलस्था विरेजुः ॥ ६४ ॥

इसके पश्चात् प्रबन्ध गान के अनुबन्ध के समय गोपियाँ पाठ शब्दों (थै थै थै थै तिगड, तिगथै, थ) का उच्चारण कर उनके अनुसार भूमि पर चरण-विन्यास और आकाश में भुजलताओं को फेंकती हुईं, एक बार वाम-परिभ्रमण में और वैसा ही दक्षिण परिभ्रमण में करती हुईं रसमय मधुर भावों को प्रकट करते समय मण्डल में शोभायमान हुईं ॥ ६४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वक्त्रे गानं तदभिनयनं पाणिपद्मे पदाब्जे।
तालो ग्रीवाभुवि विधुवनं दोलनं नेत्रयुग्मे॥
वामावामस्खलनवलना तारकायां दृगन्तः।
कृष्णे प्रेमा मनसि युगपत्तुल्यमासामथासीत्॥ ६५॥

नृत्याङ्ग भूत गानाभिनयादि की पृथक्-पृथक् अवस्थिति कहते हैं।—मुख में गाना, करकमलों में उसका अभिनय, चरणकमलों में ताल, ग्रीवा प्रदेश में कम्पन, नेत्रों में आन्दोलन, चञ्चलता, दृष्टि के बीच तारका में सव्यापसव्यभ्रमण के अनुकूल सुवलितत्व (चलन-वलन) और मन में कृष्ण विषयक प्रेम एक साथ ही इन गोपियों में प्रकट हुआ॥ ६५॥

जानूत्क्षेपभुजाहुवर्धूननिपदन्यासैः सगर्भभ्रमैः।
अत्युल्लासवशाद् द्रुतेऽपि नटने वाभ्रुवां मण्डली॥
अन्तर्वर्तिमुकुन्दकान्तिलहरीसूत्रैष्विवागुम्फिता।
नो भुग्ना न च वक्रतामुपगता सव्यापसव्यक्रमैः॥ ६६॥

सुन्दर व्रजवनिताओं की वह मण्डली जानु हिलाते समय, भुजलताओं को फेंकते समय, चरण-विन्यास के समय, बीच में वैयक्तिक परिभ्रमण के समय, अति उल्लास-आवेशानन्द से, नर्तन की द्रुत गति के समय, और सव्यापसव्य परिभ्रमण में भी वर्तुलाकार बनी रही, तिरछी, टेढ़ी नहीं हुई, क्योंकि उनके अंतःकरण में सञ्चरित मुकुन्दप्रेम की लहरियों के कारण ही वे परस्पर ग्रथित रहीं उसी आकार में बनी रहीं॥ ६६॥

पादन्यासैः सशब्दैर्मृदुमुखरमणीनूपुरध्वानरम्यैः।
धीधीधीधीतधीधीत्यनुपममधुरैस्तालपाठैश्च मिश्रैः॥
सव्यासव्याङ्गदोलैः स्खलितकुचपटं मध्यभङ्गापशङ्कं।
धुन्वाना बाहुवल्लीं ननृतुरतिमुदावर्तयोरेव तुल्यम्॥ ६७॥

नादयुक्त पदन्यासों, मृदु शब्द करने वाले मणिमय नूपुरों की ध्वनि, धी धी धी धी त धी धी इस प्रकार अनुपम माधुर्ययुत ताल पाठों के साथ सव्यापसव्य अंगभ्रमणों में स्तन के ऊपर से वस्त्र खिसकते हुए भी, कटिप्रदेश कृश होते हुए भी उसके टूटने की भीति से मुक्त बाहुलताओं को घुमाने वाली व्रजवनितामण्डली सव्यापसव्य दोनों परिभ्रमण में समान रूप से नाचने लगी॥ ६७॥

वैणिक्यो वैणविक्यो मृदु मृदु ननृतुः पादविन्यासमात्रैः
गायन्त्यस्तालधारिण्यपि किमपि तथा गीततालानुकृत्या॥
शब्दानुद्घाटयन्त्यो विदधुरथ तथा मौरजिक्योऽपि नृत्यम्
देहं किन्त्वेकसूत्रग्रथितमिव दधुस्ताः समं नर्तकीभिः॥ ६८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेणु, वीणा बजाने वाली स्त्रियाँ भी अपने सिर्फ पाद-विन्यासों से तथा गाने वाली और ताल रखने वाली स्त्रियाँ भी गीत एवं ताल का अनुकरण कर नृत्य करती हैं, ऐसा लगता था। उसी तरह मृदंग बजाने वाली भी सुमधुर शब्दों को उपयुक्त रीति से प्रकट करती हुईं इस प्रकार नृत्य करने लगीं मानों वे सब नर्तकियों के साथ एक सूत्र में बंधी हों ॥ ६८ ॥

एवं सव्यापसव्यभ्रमणकौतुके—

वामावर्तेन कृष्णो भ्रमति यदि तदा दक्षिणावर्तरीत्या।
तन्वङ्ग्यो मण्डलस्था विदधति नटनं सम्मुखीनाः क्रमेण ॥
इत्थं ताः सोऽपि शश्वत् सरससकुतुकं प्रातिलोम्यानुलोम्य।
स्वीकारेणैव नैव भ्रमि नटनकला केलिपारं स्म गाते ॥ ६९ ॥

(नैव गाते स्मनैव प्रापुः)

इस प्रकार सव्यापसव्य भ्रमण के कुतूहल में श्रीकृष्ण जब वामभ्रमण करते, तो वे सुन्दर स्त्रियाँ दक्षिणभ्रमण करती थीं। इस प्रकार के क्रम से मण्डल में श्रीकृष्ण साम्मुख्य रहते थे। इस प्रकार श्रीकृष्ण भी चिरकाल तक रसमय होकर कौतुक के साथ सव्यापसव्य भ्रमण करते हुए भ्रमणशील नृत्य कला क्रीड़ा के पार नहीं पहुँचते थे (अर्थात् नृत्य प्रवृत्ति अखण्ड रहती थी) ॥ ६९ ॥

दीपालोके प्रसरति यथा वामभागे पुरस्तात्।
ध्वान्तस्तोमः सरति सहसा दक्षिणेनैव पश्चात् ॥
इत्यन्योन्यं प्रकटमुभयोर्व्यत्यये व्यत्ययः स्यात्।
तासां तस्यापि च तनुमहः पूरयोः शश्वदासीत् ॥ ७० ॥

जब दीप का प्रकाश आगे से वामभाग में पड़ता था, तब उस मण्डली की छाया दक्षिण में दिखायी देती। इसी तरह प्रकाश दक्षिण में होने पर छाया वामभाग में पड़ती। इस तरह उन व्रजाङ्गनाओं और श्रीकृष्ण के शरीर के तेज से भी प्रभा का व्यत्यास नर्तन में होता था ॥ ७० ॥

वाद्यादिमण्डलविलासि विलासिनीनाम्।
नृत्यानुगं च हरिनृत्यसहायमासीत् ॥
गानं तु भिन्नमभवत् सुदृशो जगुस्तम्।
चन्द्रादिकं स तु जगौ ललितानि चासाम् ॥ ७१ ॥

मण्डल में शोभा पाने वाला वाद्यादि विन्यास उन विलासवतियों के नर्तन का अनुगामी और श्रीकृष्ण के नृत्य के अनुकूल था, लेकिन दोनों के गीत भिन्न थे। सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियाँ श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन कर रही थीं, जबकि श्रीकृष्ण चन्द्रादि और उन स्त्रियों के विलासों का वर्णन कर रहे थे ॥ ७१ ॥

५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

टीका :—[गोप्यो यथा—

अखिलरसामृतमूर्तिः प्रसृमररुचिरुद्धतारकापालिः ।
कलितश्यामाललितो राधाप्रेयान् विधुर्जयति ॥

यामिनीकृतरुचिः शुचिकान्तिश्चन्द्रिकावलिविभाविकचश्रीः ।
षट्पदालिकलितैः कलगीतैः पश्य भाति कुमुदाकर एषः ॥

ललितानि यथा—

वदनं मधुरिम सदनं चलनं दलनं करीन्द्रकीर्तीनाम् ।
हसितं च दृगभिलषितं तव सर्वो वर्ण्यतां केन ॥]

तासां तालविमोक्षनिर्भरहतिक्षोभेण निःसारिणा ।
पादाम्भोरुहशीधुनैव पुलिनं तत्सिक्त मासीदिव ॥
यत्ताद्दृश्यतिमात्रचित्रनटनावेगेऽपि नैकं रजो ।
धूतं किं नु रजांसि तान्यपि तदानन्देन जाड्यं ययुः ॥ ७२ ॥

[शीधुनेति प्रस्वेदरूपमधुनेत्यर्थः]

उस मण्डल के ताल-प्रदर्शन के दौरान आवेग से किये जाने वाले आघात के क्षोभ से निकलने वाले गोपियों के चरण कमलों का पसीना मानो मकरन्द ही था, जिसका सिञ्चन होने के कारण इस तरह का अति आश्चर्यकारक नर्तन का वेग होने पर भी पुलिन का एक धुलिकण भी ऊपर नहीं उठा, मानो उस नर्तन का आनन्द अनुभव कर रज भी आनन्द से अभिभूत, जड़ हो गयी थी ॥ ७२ ॥

किञ्च,

प्रत्येकं सुदृशां कपोलफलके बिम्बोद्गतं नृत्यतः ।
श्रीकृष्णस्य वपुः सनृत्यमपि तद् ब्रूते स्म तं किञ्चन ॥
तासामाननपद्मधूननविधिव्याधूतमासां यथा ।
ना ना ना सुरसा तथात्र भवतो नृत्यस्य लक्ष्मीरिति ॥ ७३ ॥

प्रत्येक रमणी के कपोल तल में प्रतिबिम्ब रूप से नर्तन करने वाले श्रीकृष्ण का शरीर नृत्ययुक्त होते हुए भी उसे कुछ कह रहा है । इन रमणियों के नृत्य की शोभा जैसी सरस है, वैसी तुम्हारी नहीं है, उनके मुखकमल के अभिनय से तुम्हारे नर्तक की शोभा तिरस्कृत जैसी है ॥ ७३ ॥

नृत्यन्त्यः कतिचित् सरोरुहदृशः प्रारब्धनृत्यान्तरे ।
कृष्णालिङ्गन मङ्गलोत्सवनवप्रोद्भूतरोमोद्गमाः ॥
जातोत्कण्ठमुकुण्ठकण्ठकुहरं प्रोन्नीय रागान्तरम् ।
गायन्ति स्म निशम्य यत् प्रमुमुहुः सङ्गीतदेव्योऽपि च ॥ ७४ ॥

कमल सदृश नेत्र वाली गोपियाँ नृत्य के बीच में ही श्रीकृष्ण के आलिङ्गन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जन्य सुख से रोमाञ्चित होकर उत्कण्ठित हो उठीं और कुण्ठित न होने वाले अपने खुले कण्ठ से दूसरे राग का आविर्भाव करने लगीं। इसे सुनकर साक्षात् सङ्गीत की देवियाँ भी मन्त्रमुग्ध हो जाती थीं। तात्पर्य यह है कि गोपियों द्वारा प्रस्तुत राग लोक-शास्त्रातीत हैं ॥ ७४ ॥

असङ्कीर्णान् जातिश्रुतिगमकवर्गेण सरसान्।
सगान्धारग्रामान् विशकलितभेदान् स्वरगणान् ॥
समुन्निन्ये काचित् सममघभिदा तेन च मुहुः।
पुपूजे सा साध्वित्यनुपम मुदा मोदित हृदा ॥ ७५ ॥

कोई गोपी रस के साथ जाति-श्रुति व्यञ्जक और परस्पर पूर्ण पृथकत्व रखने वाले वर्ग और गान्धार ग्राम में अखण्डित भेदों से युक्त एवं परस्पर का मिश्रण न करते हुए स्वर-समुदाय गाने लगती है। इस गोपी के इस अनुपम, अतुलनीय कार्य से आनन्दित श्रीकृष्ण ने 'साधु साधु' कहा और उसका अभिनन्दन किया ॥७५॥

सगरिमपधनिषु सकलाऽलङ्कृतिमणिभिः सुमञ्जुलश्रुतिषु।
स्वरसमुदयेषु तासां धामसु च प्रीतिमाययौ कृष्णः ॥ ७६ ॥

षड्ज, गान्धार, ऋषभ, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद स्वरों के कौशलपूर्ण उच्चार, आलाप के समस्त अङ्गभूत अलङ्कारों, मञ्जुल बाईस श्रुतियों के स्पष्ट प्रदर्शन से श्रीकृष्ण परम प्रसन्न हुए ॥ ७६ ॥

ताधिक् ताधिगिति ननाद यन्मृदङ्गस्तच्छ्रुत्वा सुरपुरनर्तकीसमाजः।
आश्वासं समलभत स्वकीयनिन्दावादोऽपि श्रवणरसायनः स तासाम् ॥७७॥

'ता धिक्'—यानी उन नर्तकियों को धिक्कार है, ऐसे अर्थ वाली ध्वनि मृदङ्ग से सुनकर देवलोक की नर्तकी अप्सराएं अपनी निन्दा सुनने के बावजूद आनन्दित होती थीं, क्योंकि उनके कानों को यह ध्वनि अमृत की तरह लगती थी ॥ ७७ ॥

एवं स्वातन्त्र्येण नर्तित्वा समनन्तरमनन्तरसोऽन्तरसोषूयमाणमदमदनानन्दो मुकुन्दो नृत्यन्तीषु वादयन्तीषु मण्डलस्थासु रमणीमणिषु।

वैदग्ध्यैवास्य देव्यास्वयमिवरचितां सर्वखेदापनुत्यै।
सौहित्योपायसिद्धौषधिमिव सरसां प्रेमपीयूषवर्षैः ॥
दोर्भ्यामालिङ्ग्य राधां सतडिदिव घनो हेमवल्ल्येव रुद्धः।
तापिच्छः पिच्छमौलिः सहनटनकलाकौतुके नानर्त ॥७८॥

रासमण्डल की सुन्दर, श्रेष्ठ रमणियाँ जब मण्डलाकार नर्तन एवं वादन कर रही थीं, तब अनन्त रसवाले एवं अन्तःकरण में उत्पन्न मान, मद और मदन के आनन्द से युक्त श्रीमुकुन्द ने इस प्रकार स्वतन्त्र नर्तन कर प्रेमामृत की वर्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करते हुए श्रीराधा को, जिसका निर्माण श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण खेद को दूर करने के लिए विज्ञान की मूर्तिरूप देवी ने स्वयं किया है, और जो तृप्ति के उपायों में मानो सिद्धौषधि है, आलिङ्गन दिया। विद्युल्लता से युक्त नीलमेघ की तरह, तमाल की तरह नीलवर्ण, मयूर पिच्छु का मुकुट धारण किये हुए भगवान श्रीकृष्ण नर्तन के कौतुक से व्याप्त होकर नाचने लगे ॥ ७८ ॥

भग्नावस्थितमन्मथेषुकलिकाकृष्टेर्मणिश्चुम्बको ।
राधा तेन समं ननर्त यदिदं तद्वीक्ष्य ताः सुभ्रुवः ॥
तस्या लास्यकलानुकूल्यकलने जातस्पृहा अप्यमूः ।
गातुं वादयितुं तथानुनटितुं नैश्वर्यमापेदिरे ॥ ७९ ॥

मदन के शान्त हो जाने पर सब सुन्दरियों के लिए मदनप्रवृत्ति निर्माण करने वाले श्रीकृष्ण चुम्बकमणि की भाँति पुनः आकर्षण के केन्द्र बने। उनके साथ उन्होंने जो नृत्य किया, उसे देखकर उन रमणियों के मन में श्रीराधा की तरह लास्यकलानैपुण्य दिखलाने की इच्छा जाग्रत हुई। किन्तु वे सब वैसा गायन करने, प्रेम करने या नृत्य का अनुकरण करने में समर्थ नहीं हुईं ॥ ७९ ॥

गुणसंप्रसारणविकारदीर्घह्रस्वभावाः किल येऽभ्यासधर्माः ते किल न सर्वत्रेति, नैतदाश्चर्यं, अभ्यासमन्तरेणापि तस्यास्तद्गुणानां, स्वभावसिद्धत्वात् ॥ ८० ॥

टीका—(बोभूयते विदिद्युते चकार ददौ पापच्यते इत्यादिषु क्रमेण ये 'गुणो यङ्लुकोः' इत्यादिलक्षणैर्गुणादयोऽभ्यासधर्माः द्विरुक्तस्य पूर्वोऽभ्यासस्तदीया धर्मास्ते न सर्वत्र न सार्वत्रिका क्वचिद् व्यभिचरन्त्यपीत्यर्थः यदुक्तं, 'अभ्यासविकारेष्वपवादा नोत्सर्गान् बाधन्त' इति। पक्षे गुणानां नृत्यगीतपाण्डित्यादीनां सम्यक् प्रसारणं आविष्करणं तच्च विकाराणां औत्सुक्यमदचापल्यावेगादीनां मनोविकाराणां दीर्घह्रस्वभावा दैर्घ्यह्रस्वत्वानि कदाचिद्बहुत्वं कदाचिदल्पत्वमित्यर्थः ते च ते तथा अभ्यासः पौनःपुन्येनानुशीलनं तद्धर्माः तत्र भावा इत्यर्थः तथाभूता अपि न सर्वत्र नहि सर्वेषु जनेष्वेवाभ्यासमात्रेणैव ते भवन्तीत्यर्थः तस्या राधायाः तद्गुणानां तेषां गुणानां स्वभावसिद्धत्वात् अभ्यासं विनापि नित्यं सत्ता वर्तत एवेत्यर्थः ॥ ८० ॥

व्याकरणशास्त्र में द्विरुक्त का पूर्वभाग अभ्यास होता है। उसकी गुण, संप्रसारण, विकार, दीर्घत्व, ह्रस्वत्व, आदि विधियाँ होती हैं किन्तु वे अभ्यास में सर्वत्र नहीं होतीं (कहीं-कहीं नहीं होतीं), इसी तरह वास्तव में नर्त के नृत्य, गीत, पाण्डित्य आदि जो गुण हैं, वे सर्वत्र अच्छी तरह आविष्कृत (संप्रसारण) नहीं होते। और विकार, औत्सुक्य, मद, पापल्यादि (आवेग) जो मनोविकार हैं, वे कहीं दीर्घ, कहीं ह्रस्व होते हैं, क्योंकि वे अभ्यासवश होते हैं। फिर भी वे सर्वत्र नहीं होते। अभ्यास सिर्फ करने से नहीं, बल्कि शक्ति, संस्कार से स्वयं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होते हैं। इसमें आश्चर्य नहीं। अभ्यास के बिना भी श्रीराधा में वे नर्तन गुण स्वभावसिद्ध थे, क्योंकि अभ्यास के बगैर उनकी अन्यत्र नित्य सत्ता होती ही है॥ ८० ॥

यदालोक्य उर्वशी वशीभूता, अपरा अप्सरसः सरसस्त्रपामयस्य पयोऽवलम्बिर इव गताश्चारण्यश्चारण्यसीमानं मानं जहुः, सिद्धनार्यो नार्योचितचरिता गन्धर्वदेवमुनिवध्वश्च केवलं कुसुमानि किरन्ति स्म। स्मरन्ति स्म स्मरगरिमसौभाग्यम्॥ ८१ ॥

स्वभावसिद्ध सरस नर्तन देखकर उर्वशी उनके वशीभूत हुई, और इतर अप्सराएँ लज्जारूपी सरोवर में डूब गयीं, चारण-स्त्रियाँ अरण्य में चली गयीं, सिद्ध स्त्रियों ने अपना अभिमान छोड़ दिया, गन्धर्व देव, मुनि स्त्रियों ने स्त्रियों के लिए योग्य आचरण के अनुरूप पुष्प वर्षा की और मदन के महत्व के सौभाग्य का स्मरण करने लगीं॥ ८१ ॥

राधाकृष्णौ स्वरौघं गरिमनिरिगमं धैवतांसग्रहाभ्याम्।
आरोहेणावरोहेण च गमकमयं रम्यमुल्लासयन्तौ॥
तेनातेनेति नानारसमथ नटनं गानमप्यूढरागौ।
तेनाते नेतिलोकं सरभसकुतुकोल्लासमन्योन्यजिष्णु॥ ८२ ॥

राधा—कृष्ण दोनों ने 'गरिमनिरिगम' स्वर-समूह के साथ, धैवत को अंश एवं ग्रह मानकर, आरोहण-अवरोहण में स्वरों का गमकयुक्त प्रयोग कर रमणीयता का प्रदर्शन किया और बाद में आलाप के 'तेन तेन' आदि मङ्गलसूचक शब्दों का प्रयोग कर अनेक रागों के साथ नाना रसमय गायन और नर्तन का प्रवर्त्तन किया। उसमें परस्पर विजय की अभिलाषा थी। इस लोक में इस तरह का नर्तन अभूतपूर्व था॥ ८२ ॥

तालावसानसमये करपद्मकोशन्यासं हरिः प्रियतमोरसि संविधत्ते।
वामेन पाणिसरसीरुहकोरकेण सापि प्रियस्य विनिरस्यति बाहुदण्डम्॥८३॥

श्रीकृष्ण ताल समाप्ति के समय कमल के कोश की तरह अपना सुकोमल कर प्रियतमा के वक्षःस्थल पर रख देते हैं और श्रीराधिका भी अपने कलिकाकार वाम कर से प्रियतम के भुजदण्ड को हटा देती है॥ ८३ ॥

एवं च वञ्चनरहितप्रणयोन्मुखेन, निखिलसुन्दरीहृदयदरीहृदयमतिसहृदयो हृदयोदितमदनमोदामोदातिलालसोऽलसोऽपि क्षणमपि ताभिर्मण्डलगताभि-राभीरभीरुभिः सार्धं क्षणमध्यस्थितया समं निःसमं नटति॥ ८४॥

इसी प्रकार निष्कपट प्रणय के लिए तत्पर, उन सब सुन्दर स्त्रियों की हृदय रूप 'दरी' (गुफा) का हरण करने वाले, भावावेश से युक्त, मन में उदित होने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाले मदनानन्द की सुगन्ध से पूरित, अतिशय हर्ष की लालसा से युक्त श्रीकृष्ण ने तीव्र इच्छा कुछ मन्द होने के बावजूद मण्डलस्थ गोपाङ्गनाओं के साथ क्षणभर और फिर मध्यस्थित श्रीराधिका के साथ कुछ समय के लिए अनुपम नृत्य किया ॥ ८४ ॥

एवमाहितवलयसलय सरसनृत्यविलासेन रुचिरं चिरं समयं गमयित्वा प्रतिव्यक्ति व्यक्तिमापत्स्यमानं पृथक् पृथक् तरतमभावेन भावेन चाङ्गिकेन सुकोमलकरकमलकमनीया मलास्यं लास्यं दिदृक्षुरुवाच ॥ ८५ ॥

इस प्रकार उस वनितामण्डल में, जिसने लययुक्त सरस नर्तन का विलास निर्मित किया हैं, श्रीकृष्ण ने बहुत समय बिताया और बाद में प्रत्येक का पृथक्-पृथक् और तारतम्य से आङ्गिक भावों सहित नृत्य, जिसमें अतिकोमल करों का सौन्दर्य प्रतीत हो और निर्मल मुखश्री हो, देखने की इच्छा से कहा ॥ ८५ ॥

अये क्षणमधुना विरम्यतां रम्यतां पुनरालोकयिष्ये तदुचितं विश्रमणमिति सर्वासु हिमबालुकासहिमबालुकासमवेते पुलिनोदरे दरेहितालस्यलस्यमानतया, सलीलमुपविष्टासु तासु तस्मिन्नपि ॥ ८६ ॥

हे प्रियतमा गोपियो! अरे कुछ देर तक अभी सब विश्राम करें, बाद में नर्तन करेंगे। कुछ देर विश्राम करना उचित है। ऐसा जानकर कर्पूर धूलिका से भरे, हिमधवल बालुका से युक्त उस प्राङ्गण में कुछ जड़ता आ गयी। श्रीकृष्ण-प्रेम से आप्लावित वे सब बड़ी लीला के साथ बैठ गयीं और श्रीकृष्ण भी बैठ गये ॥ ८६ ॥

समयकोविदा विदामग्रणीः सपरिजनवृन्दा वृन्दा वृन्दावनदेवता योगमाया च मा याचमाना तस्य च तासां च प्रीतिविशेषमशेषमतिमनोहरं मणिमयचषकतिरस्कारिपलाश पलाशपुटकपटलोपनीतमतिशीतमतिमधुरफलफलरसकुसुमरसादिकं रसादितमपरिमितमितरानिर्वाह्यमतिरम्य ताम्बूलमाल्यानुलेपसहितं हितं तत्समयस्य समुपनिन्यतुः ॥ ८७ ॥

टीका—(पलाशस्य किंशुकवृक्षस्य पलाशपुटकानां दलपुटकानाम्। अतिमधुरं फलं परिणामो यस्य तादृशं फलरसं रसादितरसैः स्वादैरदितम् अखण्डितं अतिरस्कृतमित्यर्थः ॥ ८७ ॥)

समय की अपेक्षा जानने वाली और ज्ञानियों में श्रेष्ठ वृन्दावन की अधिष्ठात्री वृन्दादेवी अपने परिवार सहित और योगमाया लक्ष्मी अभिलाषा से स्वयं आयीं और उनको और श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय, अति हृद्य मधुर फलों और फूलों का रस, जो अत्यन्त शीतल था, रत्नखचित पात्र को भी तिरस्कृत करने वाले पलाश वृक्ष के पत्तों से बने पात्रों में भरकर दिया। यह रसों के द्वारा अदित (अखण्डित)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

था और अत्यन्त मधुर था। उन्हें ऐसा रसपान कराया, जो अन्य लौकिक व्यक्तियों को नहीं मिल सकता। इसके अलावा रमणीय ताम्बूल, पुष्पमालाएँ और अङ्गराग भी अर्पित किये, जो उस समय के लिए हितकर थे ॥ ८७ ॥

तदवलोक्य वयस्यगणैः सहकृतं पुलिनजेमनमनवरतानन्दतुन्दिलेन वयस्या जनैः सह करिष्यमाणपुलिनजेमनमनसा मनस्ना विस्मारयतेव तेन ताभिः सग्धिवैदग्धिकया कमपि समयं गमयितुमारम्भे विधीयमाने, दिविदिविषदोभाविकौतुकदिदृक्षयाक्षयाभिलाषा नापससृपुः नापि सापराधतया तत् पुनरहो रहोजेमनं च ददृशुरपितु स्वस्वपटैरेव तिरस्करिणीं विस्तारयामासुः ॥ ८८ ॥

यह देखकर श्रीकृष्ण ने वालपन में गोपबालकों के साथ किये हुए पुलिनभोजन के सतत वर्तमान आनन्द से पूरित मन से गोपिकाओं के साथ किये जाने वाले भोजन की तीव्र इच्छा से मन में मानो स्मृति का विस्मरण करते हुए उन स्त्रियों के साथ सहभोजन की चतुराई से कुछ कालयापन करना शुरू किया। उस समय स्वर्ग में देवों ने भाविलीला के मोह के कारण घर लौटना नहीं चाहा। एकान्त सहभोजन देखना अपराध समझकर उन्होंने उसे देखा भी नहीं और अपने-अपने वस्त्रों से पर्दा बनाकर आड़ कर ली ॥ ८८ ॥

एवमतिकौतुकेन केनचिद्रहसि हसितोपहसितादिना, मदनमद नटन तरसा, रसान्तरप्राप्ताविव विवर्जित ह्रीसंकोचे वलवत्तरतरङ्गे प्रेमानन्दसरस्वति, स्वतिसहजे सह-जेमनं फलफलरसपानकादेर्विधाय, वनदेवताभिरपिहितादराभिराभिराम्यतः समुपनीतशीतसलिलमाचम्य घन सारसारस्यमुलताम्बूलवीटिकामितरेतरतरलतरकौतुकोपनीयमानामास्वाद्य ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण विलक्षण कुतूहल के साथ एकान्त में हास्य-विनोद में मदन के आनन्द द्वारा नृत्य के वेग से, मानो किसी अनिर्वचनीय आनन्द में मग्न हो गये हों, लज्जा-संकोच छोड़कर प्रबलतर तरंगों के प्रेमानन्द-सागर में सहज ही निमग्न थे। फल और फलों के रस, नाना प्रकार के पेय आदि वस्तुओं का सहभोजन कर, वनदेवताओं द्वारा रमणीयतापूर्वक, आदरपूर्वक लाया हुआ शीतल जल लेकर आचमन किया और कर्पूरादि विविध सुगन्धित द्रव्यों से सरस बनाये हुए ताम्बूल का, जो एक-दूसरे को कुतूहल से दिया जा रहा था, आस्वादन किया ॥ ८९ ॥

तरणितनयया नययापितेन कुमुदगन्धिना मरुतारुतानि दीर्घीकुर्वता मदकलकलहंससारसानां मृदुमधुरेण मन्दमुपवीज्यमानोऽज्यमानोऽतिसारस्येन पुनरपि वीरपानानन्तरं कामसंग्रामकलामिव लास्यलीलामारभमाणो लीलोपवेशमपहाय समुत्तस्थौ ॥ ९० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सूर्यकन्या यमुना ने नीतिपूर्वक भेजा हो, ऐसा रात्रिविकासिश्वेतकुमुदों की गन्ध से पूरित, आनन्द से शब्द करने वाले सारस और कलहंस के अव्यक्त मधुर स्वर को बढ़ाने वाला मन्द पवन उस व्रजवनितामण्डल की स्वयं सेवा करता हुआ बहने लगा। और पुनः वीरपान कर कामयुद्ध की प्रत्यक्ष कला की तरह लास्यलीला को आरम्भ करने के विचार से समाज विश्रान्ति का त्याग कर खड़ा हो गया ॥ ९० ॥

उत्थाय च।

पूर्वं गानाद्यक्रृत यदहो हन्त तस्यातिरिक्तम् ।
रागं वंश्या स्वयमथ जगौ दुर्गमंगीतविद्भिः ॥
ग्रामं गान्धारकमुपनयन्नेष तस्याऽनुगाने ।
गायन्यस्ताः पुनरनुययुर्मौरजिक्यादियुक्ताः ॥ ९१ ॥

उठकर, बासुरी बजाने वाली ने पहले गाये गये गान और राग के अतिरिक्त राग स्वयं आरम्भ किया। गीत जानने वालों के लिए भी यह राग बड़ा कष्ट साध्य था। फिर भी गाने वाली और मृदंग बजाने वाली स्त्रियाँ गान्धार ग्राम को प्रकट करती हुई उसका अनुगायन करने लगीं ॥ ९१ ॥

तन्त्री कण्ठादि सर्वस्वरमिलनविधौ चारु सम्पन्नमात्रे ।
पङ्क्तीभूयस्थितानां कनकदलरुचां गायनीनां पुरस्तात् ॥
स्थित्वा तालाऽवसाने झटिति झणझणत्कारि संगीतविद्यो-
द्गीर्णं धामेव काचिन्नटनरसकलाचार्यवर्य्याविरासीत् ॥ ९२ ॥

तन्त्री (वीणादि) के स्वर और कण्ठ के स्वर के मेल आदि की प्राथमिक क्रिया पूर्ण हो जाने पर सुवर्ण पत्र की तरह कान्तिवाली गायक-स्त्रियों के पंक्ति बनाकर एक श्रेणी में खड़ी हो जाने पर उनके अग्रभाग में खड़ी होकर ताल की समाप्ति पर झट से झण-झण करने वाली मूर्ति रूप संगीत विद्या का मानो प्रकट तेज ही है, ऐसी भासने वाली नर्तनरस और कला की श्रेष्ठ आचार्या प्रकट हुई ॥ ९२ ॥

आकुञ्चज्जानु कृत्वा पृथुनि कटितटे वाममर्द्धेन्दुमन्यत् ।
व्याकोशं पद्मकोशं मृदुललितमथोन्नोय कुञ्चत् कफोणि ॥
क्षीणक्षोणावलग्नं ह्लसितवलि समुच्छूनवक्षोजभारं ।
तस्थौ सव्यापसव्य स्खलदलसलसत्तारकैर्दृष्टिपातैः ॥ ९३ ॥

जानुओं को आकुञ्चित करती हुई, अपने स्थूल कटितटप्रदेश में वामहस्त का अर्धचन्द्र और दक्षिण का पद्मकोश सुन्दरता से दिखाकर, कफोणि (कुहनी) प्रदेश को कुञ्चित करती हुई, मध्यप्रदेश को क्षीण जैसा करती हुई, पेट की बलियाँ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसमें नष्ट हों, ऐसे दैर्घ्य से वक्षःस्थल फुलाकर, वाम एवं दक्षिण भाग में स्खलन करने वाले और मन्दता के कारण सुशोभित तारकाओं से युक्त दृष्टिपात दोनों ओर करती हुईं खड़ी हो गयीं ॥ ९३ ॥

अङ्गैः प्रस्वेदमेद्यज्जतुभिरिव नवैरङ्गमङ्गं स्पृशद्भिः।
दुःसाधां नृत्यकृद्भिर्विषमगतिभिदां हेलयोल्लासयन्ती ॥
लीलोत्सर्पापसर्पक्रमविधुतभुजा सारणाकुञ्चनाभ्याम् ।
हस्तैर्हंसास्यमुख्यैरभिनयकुशला मन्दमन्दं ननर्त्त ॥ ९४ ॥

पसीने से स्निग्ध लाख की तरह कोमल अपने प्रत्येक अंग को स्पर्श करती हुई, नर्तज्ञों के लिए कठिन विषम गति की विद्या को सहज भाव की लीला से दिखाती हुई, लीला से भुजाओं को ऊँचा-नीचा, पास-दूर क्रम से फेंकती हुई और हंसास्य, कर्तरीमुख आदि हस्तों से अभिनय-कौशल दिखाती हुई गोपी मन्द-मन्द नाचने लगीं ॥ ९४ ॥

क्षीणक्षीणोदरमतिशयस्फारवक्षोजभारम् ।
पार्ष्णिद्वन्द्वोपरिपरिलुठद्वेणि शाम्यद्वलीकम् ॥
पृष्ठे भुग्ना व्यजयत करौ धुन्वती तालमोक्षे ।
स्मारं सज्जीकृतमिव धनुश्चाम्पकं व्युत्क्रमेण ॥ ९५ ॥

नर्तकी ने नर्तन के समय सुवर्णचम्पकमय मदन के धनुष को भी जीत लिया, ऐसा लगता था कि पेट अति कृश किया गया है और उत्फुल्ल होने के कारण स्तन आगे बढ़ा हुआ है। पेट की त्रिवली नष्ट, शान्त हो गयी है, वेणी एडी पर झूल रही है और पृष्ठ भाग में पूर्णतया वक्र होकर ताल-प्रदान में कर-कमलों को हिलाती हैं, इस प्रकार सज्ज नर्तकी मदन के चम्पकमय धनुष की तरह दीखती थी, मानो उस धनुष को भी उसने जीत लिया है ॥ ९५ ॥

सा जानुभ्यां क्षितितलमवष्टभ्य विस्फार्य बाहू ।
वक्त्रामोदभ्रमदलिकुलं लोलहारावतं सम् ॥
राजत्तेजः परिधि झणितालङ्कृति व्याजुघूर्णे ।
वेगक्षिप्ता कुसुमधनुषः काञ्चनी चक्रिकेव ॥ ९६ ॥

जानु को जमीन पर रखकर, बाहुओं को पसारकर जिस समय वह चक्राकार भ्रमण करने लगी, उस समय उसके मुख की सुगन्ध से भँवरे उसके चारों ओर घूमते थे, आभूषणों का झणकार हो रहा था, गले के हार हिल रहे थे और उसके तेज का मण्डल चारों ओर फैल रहा था (उसमें भँवरों की नीलकान्ति, अधर की अरुणकान्ति, शरीर के अवयवों की गौर कान्ति (पीतारुण), हीरों की श्वेत कान्ति झलक रही थी) और इनके तेजोवलय वेग से घूमने के कारण ऐसा लगता था जैसे कामदेव का सुवर्णमय चक्र ही घूम रहा है ॥ ९६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पादाङ्गुल्यावलम्ब्य क्षितितलमलघुस्फारवक्षोजजानुः ।
पार्ष्णिद्वन्द्वोपविष्टा ह्रसितवलि नमन्नीवि विस्तीर्णवक्षाः ॥
अङ्गुष्ठौ बद्धमुष्टयोः कुचभुवि करयोर्न्यस्य तालानुकृत्या–।
लङ्कारान् कूजयन्ती गदति तथ तथै थैतथै थै तथैति ॥९७॥

पादाङ्गुलियों से जमीन पर बैठकर जिसका विस्तीर्ण कुचमण्डल अधिक विस्तृत हुआ और जानु की भावपूर्ण स्थिति है, जो अपनी दोनों एड़ियों पर बैठी है, श्वास पूरण के कारण जिसकी त्रिवली लुप्त हुई है, जिसकी नीवि (फुफुती; साड़ी का वह भाग जो पेट के नीचे डोरे से बँधा रहता है) शिथिल हो गयी है, बद्ध मुष्टि करके जिसके दोनों अंगुष्ठ स्तनतट पर रखे हुए हैं, ऐसी वह ताल का अनुकरण कर अलङ्कारों से ध्वनि निकालती हुई मुख से 'तथ तथै थै तथै थैतथ' आदि पाठाक्षर बोल रही है ॥ ९७ ॥

युक्तानां कण्ठतन्त्रीचय सुषिरघनानद्धवाद्यैकतायाम् ।
पश्चात् सख्यंसराजद्भुजलतमदती चारुताम्बूलवीटीम् ॥
भ्रश्यन्मञ्जीरबन्धे प्रणयिपरिजनोपात्तपादा समन्ताद् ।
अञ्चल्या वीज्यमाना श्वसितचलकुचासा विशश्राम रामा ॥९८॥

नर्तन समाप्त होने के बाद मण्डल से अचानक लुप्त होकर कण्ठस्वर और चतुर्विध वाद्य के स्वर को मिलाने में व्यग्र मण्डली के पीछे बैठकर उस रमणी ने विश्राम किया। उसकी भुजलता सखी के स्कन्ध पर विराजमान है, वह सुन्दर ताम्बूल की चर्वण कर रही है, ढीले हुए नूपुरों को बाँधने के लिए प्रेमास्पद परिजनों के हाथ में उसके चरण हैं, अञ्चलों से उस पर वायु झेला जा रहा है और श्वासोच्छ्वास से उसके कुचमण्डल के वस्त्र हिल रहे हैं ॥ ९८ ॥

विश्रम्य च क्षणं पुनर्गायिन्यादिषु, गीतान्तरावतारमेलनालापलालित्यं सम्पादयन्तीषु प्रविश्य, अभिरूपज्येष्ठा, ज्येष्ठामदनगर्वतर्जनी तर्जनी भुवनसौरूप्यसारमध्यमा मध्यमा रतिमदनाभिकाऽनामिका वैचित्र्ये कनिष्ठा कनिष्ठा चेति ललितकरशाखामधुरिमा ॥ ९९ ॥

क्षण मात्र विश्राम करने के बाद पुनः गाने-बजाने वाली, दूसरे गीत के आलाप का सुन्दरता के साथ दर्शन कराने में रत उस मण्डली के बीच आकर वैदुष्य में सर्वश्रेष्ठ ज्येष्ठाङ्गुलि (अङ्गुष्ठ), मदन के गर्व का तर्जन करने वाली (फटकारने वाली) तर्जनी, त्रिभुवन के श्रेष्ठ सौन्दर्य के सार में विशेष शोभा वाली मध्यमा रति के मद को नीचा कर देने वाली अनामिका, वैचित्र्य में अद्वितीय कनिष्ठिका आदि अङ्गुलियों के सौन्दर्य की धनी···· ॥ ९९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कराभ्यां कराभ्यां दर्शितगीतपदार्था पदार्थावलीव मनोभवस्य मनोभवस्य च निर्नर्तिषा परं कुर्वंती वर्नर्तितुमारेभे ।। १०० ।।

उस गोपी ने अपने दोनों हाथों से गाने के भावार्थ को दिखाते हुए प्रत्यक्ष मदन के मन में नाचने की तीव्र इच्छा जाग्रत करती हुई इस प्रकार नृत्य करना आरम्भ किया, मानो मदन के सर्व पदार्थों की पंक्ति हो ।। १०० ।।

तिर्यक्कृत्योन्नमितनमितस्फारवक्षोरुहस्फिग् ।
झंकुर्वद्भिः कनकवलयैर्धुन्वती पाणिपद्मे ।।
तत्ता तत्थै तिकिडतिकिथै तालमुत्थापयन्ती ।
पर्यायेणोत्क्षिपति सुदती जानुनी दोर्लते च ।। १०१ ।।

नर्तन के समय अपने स्तनमण्डल और नितम्ब को तिरछे, ऊँचे और नीचे करती हुई, पाणिपद्मों को सुवर्णमय कङ्कणों की झंकार के साथ नचाती हुई, 'तत्ता, तत्थै, तिकिड़, तिकिथै' आदि तालस्वरूप को प्रकाशित करती हुई वह सुन्दर दाँत वाली क्रमशः जानुओं और बाहुलताओं को ऊँचा फेंक रही है ।। १०१ ।।

ऊर्ध्वोर्ध्वभ्रमिभिरुपर्युपर्युदीर्णैः ।
गौरिम्णां परिधिभिरुल्ललास गौरी ।
गायन्यादिक नलिनीवनादिवोच्चैः ।
वात्याभिः किमपि धुता परागराजी ।। १०२ ।।

ऊँचा या ऊपर से भी ऊपर ही (हस्तों के) भ्रमण के कारण गौरवर्ण का जो वर्तुल निर्मित हुआ, उससे वह गोरी रमणी शोभायमान हुई। ऐसा लगता है मानो गाने वाली स्त्रियाँ नलिनी (कमलिनी) का वन है और जोर से बहने वाली वायु ने उन कमलिनियों के परागसमूह को आकाश में फैला दिया है। (हिलते हुए कमल सदृश हाथ आरक्त होने के कारण लालवर्ण के परागों के सदृश दिखायी देते हैं।) ।। १०२ ।।

तेजोवल्लीमिव तनुलतामन्तरिक्षे दधाना (धुनाना) ।
सेयं नानागतिमतितरां दुष्करां व्याततान ।।
नेदं शिक्षा प्रकटनमहो किन्तु लावण्यदेव्याः ।
पादावस्या भुवि न पततः केवलं हेलयैव ।

किञ्च । विद्युद्वल्ली यदि चिरतरस्थेयसी निष्पयोदा ।
हस्तप्राप्या मृदुलमरुता तादृशं धूयमाना ।।
तालोल्लासध्वननमुखरा जायते दैवयोगात् ।
तद्धर्येवासौ नटनविदुषी सोपमत्वं बिभर्ति ।। १०३ ।।

यह नर्तकी तेजोमयी लता की तरह अपनी देहरूपी लता को आकाश में ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धारण कर (कम्पित कर) नर्तन की अतिशय दुष्कर, कठिन नाना प्रकार की गतियाँ प्रदर्शित कर रही है। यह कोई नर्तन-शिक्षा का प्रदर्शन नहीं, किन्तु सौन्दर्य देवता का चरणद्वन्द्व है, जो भूमि पर है ही नहीं, केवल लीला के कारण कभी-कभी भूमि को स्पर्श करता है। और—

यदि बिजली निरभ्र आकाश में शाश्वत रहनेवाली हो, और उसे हाथ से पकड़ा जाता हो और मन्द वायु से उसी तरह हिलती हो (जैसा कि नर्तन शास्त्र में कहा गया है) और ताल के अनुसार वह शब्द निकालने में समर्थ हो, ऐसा यदि दैवयोग से सम्भव हो, तो इस नर्तन-विदुषी के लिए यह उपमा हो सकती है, अन्यथा वह गोपी निरुपम, अनुपमेय है ।। १०३ ।।

> नर्तित्वैं लघुलघुपदं दोलयन्ती नितान्तम् ।
> तालोपान्ते कुचभरधुरा दुर्वहं पूर्वकायम् ॥
> वात्यावर्तैरिव कमलिनी हन्त हा हन्त मध्ये ।
> भुग्ना माभूदिति परिजनैः सव्यथं सा शशङ्के ।। १०४ ।।

द्रुत गति से हिलनेवाले पैरों से नृत्य करती हुई तालसमाप्ति के समय स्तनभार को धारण करने में कठिनाई से वह शरीर के पूर्वभाग को दोलायमान करती है। उस समय उसके आप्तजन इस भीति से शंकाभरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हैं कि झंझावात् के झोकों से हिलनेवाली कमलिनी की तरह वह कहीं टूट न जाय । १०४ ।

एवं लघुगुरुप्लुतद्रुतद्रुतार्धद्रुतपादभेदेन तालसमं चरणकमलं चालयन्ती नटनकौतुकाकुला तुलाकोटिविवरवरकनककलापनिकरेषु, लघ्वादिक्रमेण निनदत्सु कदाचित्सर्वेषामेव कदाचित् कियतामेव कदाचिद् द्वित्राणामेव कदाचिन्नैकस्यापि निनदो यथा भवति तथा नृत्यन्ती, साधुसाध्विति प्रीयमाणेन कृष्णेनराधया च परिरेभे, वियति गर्वें सर्वेषामप्सरः सदसां स्वःसदां च विस्मयः स्मयवान् बभूव ॥ १०५ ॥

इस प्रकार लघु, गुरु, प्लुत, द्रुत, द्रुतार्ध, द्रुतपाद भेद से ताल के अनुसार चरण कमलों को हिलाती हुई, नर्तन के कुतूहल में मग्न होकर वह गोपी आभूषणों के बीच में बिठायी हुई किंकिणियों में से कभी सब से, कभी कुछ से, कभी सिर्फ दो-तीन से और कभी एक से भी नहीं, इस प्रकार शब्द निकालते हुए उनके अनुकूल अंगविक्षेप से नृत्य करती थी । उस समय राधा-कृष्ण के मुख से प्रसन्नता के कारण 'वाह-वाह' शब्द निकल रहे थे और वे दोनों गोपी को आलिङ्गन देते थे । आकाशस्थ सभी अप्सराओं और देवसमाज में सबको अतिशय आश्चर्य हुआ ।। १०५ ।।

एवं प्रत्येकमेव नृत्यमालोक्य पुनः सकलाभिः कलाभिः परीतः सकला-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भिरेव ताभिः सह प्रकीर्णनटनक्रममारभमाणः सरसतर तरङ्गितमानसो नृत्यति नर्तयति गायति गापयतिस्मेत्यायामिनीं यामिनीं निमेषमात्रमिव यापयन् क्रीडति स्म ततः प्रकीर्णक नृत्ये कदाचिदेकीभूय कदाचिन्मण्डलीभूय कदाचिदेकैकशः कदाचित्संभूय च नृत्यन्तीनां गायन्तीनां च तासां काचित्कृष्णेन समं सह गायति नृत्यति स्म च ।

ततः । सहनर्तनगानतत्परा श्रमजालस्य सुरस्य विग्रहा ।
श्लथमानकुचांशुका हरेः पृथुमंसं भुजया समग्रहीत् ॥ १०६ ॥

इस प्रकार प्रत्येक का नृत्य देखकर सर्वकलानिपुण भगवान् ने उन सभी रमणियों के साथ सम्मिश्र नर्तन आरम्भ किया, आनन्द से पूर्ण अन्तःकरण से नाचते-नचाते हुए, गाते-गवाते हुए उस दीर्घरात्रि को निमेष मात्र में बिताने वाले श्रीकृष्ण ने नृत्यक्रीड़ा की। उसके बाद सम्मिश्र नृत्य में कभी सब एक होकर, कभी मण्डलाकार होकर, कभी एकाकी, कभी मिलकर नाचती-गाती हुई उन रमणियों में से किसी ने कृष्ण के साथ नृत्य-गान में मग्न होकर अपने रसमय शरीर से, जिसके स्तन से वस्त्र गिर गया है, उनके परिपुष्ट स्कन्ध देश को ग्रहण किया ॥ १०६ ॥

ततश्च । तमालस्य स्कन्धे श्लथपतित शाखेव पवन- ।
क्लमात् खिन्ना हैमी व्रततिरिवसाऽशोभत भृशम् ॥
वपुष्मत्या रत्या लसदलसभावोपहतया ।
परिष्वक्तो मूर्तः समघटत शृङ्गार इव सा ॥ १०७ ॥

वायु के झोंकों से क्लान्त वृक्षशाखा तमालवृक्ष पर गिरने से जिस प्रकार शोभायमान लगती है, उसी प्रकार सुवर्ण लता की गोपी प्रतिभासित होने लगी, मानो रति ने मूर्त रूप धारण कर किञ्चित् मन्दता से व्याप्त होकर मूर्तिमान् शृङ्गार रस को ही आलिङ्गन दिया हो ॥ १०७ ॥

काचित्कूजितकाञ्चिकिङ्किणिरणन्मञ्जीरमान्दोलता ।
हारेण श्रवणोत्पलेन ललिता चीनाञ्चलेनापि च ॥
कृष्णांसे कृतवामबाहुलतया लीलाविलासालसम् ।
गायन्ती नटति स्मतामनुनटन् कृष्णस्तदेवाजगौ ॥

कृष्णस्य पीतवसनाञ्चलमम्बुजाक्षी ।
वामेन पद्मललितेन करेण धृत्वा ॥
शश्वत् प्रसर्पमपसर्पमपीहमाना ।
नृत्यन्त्यहो तमपि नर्तयतीह काचित् ॥ १०८ ॥

मेखला की किंकिणियों और नूपुरों से मधुर ध्वनि करती हुई, कर्णकुण्डल,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोलायमान हार, सुकोमल रेशमी सुकोमल वस्त्रों से सुशोभित गोपी अपनी भुज-लता को कृष्ण के स्कन्ध पर रखकर, अनेक लीलाविलासों में मग्न होकर गाती हुई नाचती है। उसका अनुकरण कर श्रीकृष्ण उसी प्रकार नाचते और गाते हैं। कमल के सदृश नेत्रवाली कोई गोपी अपने वाम करकमल से श्रीकृष्ण के पीताम्बर का आँचल पकड़ कर बहुत देर तक आगे-पीछे नर्तन गति दिखाने की इच्छा से नाचती हैं और श्रीकृष्ण को भी नचाती है॥ १०८॥

काचित्तु—कृष्णप्रणीतमुरलीकलगानरीत्या ।
हेलावशेन लयतालसमं नटन्ती ॥
लीलाकृतं स्खलनमस्य दृशाऽऽक्षिपन्ती ।
स्वं तालभङ्गमथ संवर याम्बभूव ॥ १०९ ॥

श्रीकृष्ण की मुरली के गान के अनुसार सहजभाव से लयताल के अनुरूप नाचने वाली कोई गोपी लीलावश जानबूझकर किये हुए श्रीकृष्ण के स्खलन (तालभङ्ग) को देखकर दृष्टि से ही उसका निषेध करती हुई, अपने ताल को भग्न होने से बचा लेती है॥ १०९॥

काञ्चिद्वीणां मधुरमृदुलं वादयन्तीं सलीलम् ।
गायं गायं हरितमंतिमुदा सस्मयं नर्तयन्तीम् ॥
नान्यैर्गम्यां गतिमथ चलन् कौतुकादेव वाद्य- ।
भ्रंशे संभालन बहुतर व्यग्रचित्तां चकार ॥ ११० ॥

कोई गोपी वीणा को सौम्य एवं मधुर ढंग से, लीला से बजाकर बड़े आनन्द से श्रीकृष्ण को नचाती है। उस समय श्रीकृष्ण अन्यों के लिए जानने में अति कठिन गतियाँ दिखाते हुए कुतूहल के साथ इस तात्पर्य से नाचते हैं कि गोपी अपना वाद्य बजाने में भूल करे और वादन में गलती न हो, इसलिए उसे बहुत व्यग्र, सावधान रहना पड़ता है॥ ११०॥

श्लिष्यति काञ्चन चुम्बति काञ्चन कस्याश्चनाधरं पिबति ।
नृत्यन्नेवहि कृष्णो रमयाञ्चक्रे वधूरखिला: ॥
आसीन्न सा तत्र ननर्त नो या नृत्यं च तन्नो यदकृष्णदृष्टम् ।
कृष्णस्य दृष्टिश्च न सा न यस्यामेकैकश: श्लेषणचुम्बनादि ॥ १११ ॥

नृत्य के समय श्रीकृष्ण किसी का चुम्बन ले रहे थे, किसी का आलिङ्गन कर रहे थे और किसी के अधरोष्ठ का पान कर रहे थे। इस प्रकार सब गोपियों को अपने साथ रमण करा रहे थे। उस मण्डल में ऐसी कोई रमणी नहीं थी जिसने नृत्य नहीं किया, ऐसा कोई नृत्य नहीं था जिसे श्रीकृष्ण ने न देखा हो और श्रीकृष्ण की एक भी दृष्टि नहीं थी जिसमें प्रत्येक को आलिङ्गन, चुम्बनादि न प्राप्त हुआ हो॥ १११॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततश्च मुक्तावलीमिव जुगुम्फ ललाटमूले ।
घर्माङ्कुरान् सहचरीव समस्तमङ्गम् ॥
माध्वीकपीतिरिव सालसयाञ्चकार ।
श्रान्तिः कुरङ्गकदृशां श्रियमापुपोष ॥ ११२ ॥

नृत्य से श्रान्त हरिण नेत्रवाली स्त्रियों के भालप्रदेश पर मौक्तिकमाला की भाँति शोभायमान पसीने के विन्दु उभर आये, जैसे किसी सखी ने मुक्तामाला धारण करायी हो; और उस श्रान्ति के कारण उन रमणियों में मदिरापान से आने वाली जड़ता की सृष्टि हुई, जिससे वे सुन्दरियाँ अधिक शोभने लगीं ॥ ११२ ॥

ततश्च । दधाना दोर्युग्मं भुजशिरसि पार्श्वे विलसतो ।
हरेर्लीलालस्यदकृत तनुवल्ली विवलनाम् ॥
ध्रुवं सौभाग्यानां भरमसहमानेव कतमा ।
क्षणं विश्रामाय व्यधित दयितस्योपरि वधूः ॥११३॥

नर्तनलीला से आयी हुई जड़ता के कारण किसी गोपी ने निकट ही खड़े भगवान श्रीकृष्ण के अंस (कन्धे) पर अपनी दोनों भुजलताएँ रखकर अपने शरीर का मोटन किया (अँगड़ाई ली) । दूसरी किसी गोपी ने जैसे इस परम-भाग्य का भार ही सहन न होता हो, क्षण भर विश्राम के लिए उस भार को अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के ऊपर छोड़ दिया ॥ ११३ ॥

तत्र तत्रपे न काऽपि कापि शायनमत्तेव तेवमाना मानाधिक्यवती ललितलावण्याश्रमेण श्रमेण विलुलिता कृष्णेन भुजशिरसि रसिकभावेन विन्यस्तं न्यस्तं रत्नदण्डमिव भुजदण्डं लसत्परिमलमलयजरसालिप्तमहो महोत्पलसौरभरभसं स्वभावतो भावतोषतरङ्गेण रङ्गेण समाघ्राय तदनु-लोमलोमहर्षोत्कर्षोत्कमनाश्चुम्बनेनोपभुक्तवती ॥ ११४ ॥

वहाँ कोई एक गोपी अधिक मानवती-सी हो रही थी, मानो मदिरा से मत्त हो, और लावण्यातिशय निर्माण करनेवाले परिश्रम से विकल हो गयी । श्रीकृष्ण ने रसातिरेक से उस गोपी के स्कन्ध पर अपना कर रख दिया, जो इतना शोभा-यमान था मानो रत्नमय दण्ड हो । वह भुजदण्ड मलयाचल के चन्दन के रस से पुता हुआ था और उसमें से बड़े सुगन्धी कमलों को सुगन्ध आ रही थी । ऐसे हाथ को उस गोपी ने आनन्द, तृप्ति आदि अनेक भावों से आन्दोलित होकर प्रेम से चूम लिया और उससे तुरन्त ही उत्पन्न होने वाले आनन्दजन्य रोमाञ्चों से पूरित उत्कण्ठा के साथ हाथ का चुम्बन कर उपभोग किया ॥ ११४ ॥

कृष्णोऽपि कस्याश्चन (मानायामवत्या) सालस्यलास्यलावण्यचल-न्मणिकुण्डलताण्डवप्रतिकृतिकृतिकृतिनिगण्डे श्रमजनितालस्यलस्यमानतया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गण्डं निधाय वर्तमानाया मानायामवत्या वदनचन्द्रमसमसमोर्ध्वमालक्ष्य, चिबुकमुन्नमय्य, मधुमधुरिमधरेऽधरे ताम्बूलचर्वितं वितन्द्रचन्द्राननो वितितार ॥ ११५ ॥

श्रीकृष्ण के कपोल आलस्य और लास्य दोनों के कारण शोभायुक्त लग रहे थे और रत्नजड़ित एवं नर्तन से हिलने वाले कुण्डलों और उनके ताण्डव का प्रतिबिम्ब कपोलस्थल पर पड़ रहा था। ऐसे कपोल पर परिश्रम से प्राप्त जड़ता के कारण सुशोभित अतिमानवती गोपी ने अपना गण्डस्थल रखा था। श्रीकृष्ण ने भी इस मानवती गोपी के मुखचन्द्र को उसकी ठोडी ऊपर उठाकर टेढ़ी नजर से देखा और मधुर रस के माधुर्य को धारण करने वाले उसके अधर में पूर्णचन्द्र की तरह अपने मुख से चर्वण किया हुआ ताम्बूल दे दिया ॥ ११५ ॥

काचन सौभगभगवत्तापरिमलानटन्ती, नटन्ती गायन्ती, श्रान्ता श्रान्ताभिरामा रामा—

दीर्घोच्छ्‌वासप्रचलसिचये हारहिल्लोललीलम् ।
हेलां बिभ्रत्युरसि कुचयोः कृष्णपाणिं न्यधत्त ॥
तावप्येकाम्बुरुहपिहित स्वर्णकुम्भाविवास्ताम् ।
अत्यासत्तेः फलमिदमहो यन्न पार्थक्यमेति ॥११६॥

अपने परम सौभाग्य रूप ऐश्वर्य की ख्याति से नर्तन करती हुई, गायन करती हुई म्लान, श्रान्त होने से और भी सुन्दर दिखने वाली रमणी ने—

जिसके वस्त्र का आँचल श्वासोच्छ्‌वास के कारण हिल रहा है, मानो उसके वक्षःस्थल का हार ही हिल रहा है, अपने दोनों स्तनों पर श्रीकृष्ण का एक हाथ अपने हाथ से पकड़कर रखा। उस समय वे दोनों स्तन कमल से ढके हुए स्वर्णकुम्भ की तरह दिखायी देने लगे। अत्यासक्ति (अति निकट होने) का यही फल होता है कि वे कभी अलग नहीं होते (उसके दोनों स्तन अभी पुष्ट होने से परस्पर सटे हुए थे) ॥ ११६ ॥

एवं तासां श्रमजलकण क्लिन्न कर्णोत्पलानाम् ।
मान्द्यं याते कुवलयदृशां नृत्यवेगे क्रमेण ॥
तूष्णीकत्वं ययुरथ मणीकिङ्किणी नूपुराद्या ।
मन्ये तेषाममपि समजनि श्रेयसी शान्ति बाधा ॥ ११७ ॥

(श्रेयसी = अत्यधिका)

इस प्रकार नर्तन करते-करते परिश्रम के कारण पसीना आ गया और उसके कणों से कान के कमल, कर्णफूल म्लान हो गये। और धीरे-धीरे उनके नाचने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का जोश कम हो गया। नूपुरों, रत्नमणियों, किङ्किणियों ने आवाज करना बन्द कर दिया, मानो उन्हें भी नर्तन से अतिशय पीड़ा होने लगी ॥ ११७ ॥

तथापि तेषां मन्द-मन्द कलकोमल झङ्कार काकलिकया सविभ्रमभ्रमणेन गानेन च, सचमत्कारं काश्चन कृष्णेन समं ननृतुः ॥ ११८ ॥

तथापि उनमें से कुछ गोपियों ने मन्द-मन्द अव्यक्त मधुर सूक्ष्म ध्वनि-झङ्कार करती हुई, विलास के साथ घूमती हुई, गाते-गाते अति चमत्कारपूर्ण नर्तन श्रीकृष्ण के साथ किया ॥ ११८ ॥

आयामवती यामवती सा वरं व्यरंसीत्, न पुनरासां रासान्तरङ्ग तरङ्गलीला इति स्थिते ॥ ११९ ॥

बड़ी लम्बी रात्रि समाप्त हो गयी, किन्तु इन सब गोपियों की रासलीला की अनेक अन्तरंग लीलाएँ और तरंगें समाप्त नहीं हुईं ॥ ११९ ॥

आश्लेषाधरपानचुम्बनरसालापस्मितालोकनैः ।
आसां रासविलासकौतुकजुषां यूथैः सयूथाधिपैः ॥
स्वच्छायावलिभिः स्वचेष्टितकलानैपुण्य भाग्भिर्यथा ।
बालः श्रीरमणोत्तमोऽप्यरमत प्रेम्णा स मुग्धो हरिः ॥ १२० ॥

आलिङ्गन, अधरपान, चुम्बन और रसमय वार्तालाप, हास्ययुक्त कटाक्ष आदि विशेष रासक्रीड़ा-कौतुकों को अनुभव करनेवाले उस स्त्री-समूह और उनके मुख्य यूथाधिपों के साथ श्रीकृष्ण रमारमण होते हुए भी प्रेम से विशुद्ध बालसुलभ भाव से रमण कर रहे थे, जैसे बालक अपनी चेष्टाओं, कलाओं से बनी छायाओं के साथ खेलता है ॥ १२० ॥

(रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्ब विभ्रमैः ॥

इति मूलानुसारम् ।

आनन्दिनीभिः स्व शक्तिभिरेव रममाणो हरिः स्वच्छायाभिर्बालक इव इत्युत्प्रेक्ष्यते ।

यहाँ यह बात समझने योग्य है कि ये समस्त गोपियाँ श्रीकृष्ण की स्वरूपभूत शक्तिस्वरूपा हैं ।)

कृष्णाङ्गसङ्गसुखमग्नधियस्तदिच्छा ।
स्रोतोनिवेशिततनूलतिका मृगाक्ष्यः ।
नैवाम्बराणि कुचकञ्चुलिकाश्च केश- ।
पाशांश्च हन्त विविदुः स्खलितानि तानि ॥ १२१ ॥

श्रीकृष्ण के अङ्गालिङ्गन-सुख में मग्न होने वाली उन हरिणनयना गोपियों को श्रीकृष्ण के इच्छा रूप प्रवाह में अपनी तनुलता को छोड़ देने से अपने वस्त्रों,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चोली, केशपाश आदि का भी भान नहीं था और नर्तन की गलतियाँ भी ध्यान में नहीं आती थीं ।। १२१ ।।

एवं विहरतो हरतो निखिलभुवनवनजाक्षीणां मनांसि तस्य निखिल सौभगवतो भगवतो व्रजराजपुत्रस्य विक्रीडितमीडितमीश्वरैरपि समालोक्य दिवि दिविषद्वध्वो मुमुहुर्मुहुरहोरहो निरुपमदधिकरणकरणरणकपराहृतधियः समनोरथावताराणां ताराणां ततयश्च हरि हरि हरिणाङ्कोऽपि रासारम्भमारभ्य गतिवैक्लव्येन निष्पन्द एवाभवदतएवोचितमायामिनी यामिनीति ।। १२२ ।।

इस प्रकार त्रिभुवन की सुन्दरियों का मन हरण करने वाले, सर्वसौभाग्यशाली, षडैश्वर्य परिपूर्ण गोकुलाधीश्वर नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण रास-क्रीड़ा करते हैं, देखकर देवों ने भी इस क्रीड़ा की प्रशंसा, स्तुति की और आकाश में विद्यमान देवाङ्गनाएं विमोहित हुईं। आश्चर्य की बात यह है कि अनेक मनोरथों से युक्त तारकाओं की श्रेणी और चन्द्र भी उस रास के आरम्भ से गतिहीन हो गये (विचरण करना भूल गये), इसीलिए वह रात्रि अति लम्बी हो गयी ।। १२२ ।।

ततश्च । यावत्यो या मदनमदतः सुभ्रुवो रागवत्यः ।
श्रीकृष्णेन स्वयमपि तथा तावता रागिणैव ।।
सम्पूर्णार्थाः प्रतिजनमहो कारयामासिरे ताः ।
मर्यादा हि प्रणयरहसां सैव सन्नायकस्य ।। १२३ ।।

उस रासमण्डल में मदन के मद से सुन्दर भौं वाली जितनी भी गोपियाँ थीं, वे प्रेममग्न हो गयीं, स्वयं श्रीकृष्ण ने उतने ही प्रेम से उन सब रमणियों की (प्रत्येक कुञ्ज में पृथक् पृथक्) अभिलाषा पूर्ण की । अच्छे, श्रेष्ठ नायक के एकान्त प्रणय की यही मर्यादा होती है ।। १२३ ।।

श्रान्तानां रमणकलाभिरङ्गनानां ।
स्वेदाम्भः स्मितसुभगान्मुखेन्दुबिम्बात् ।।
प्रेमार्द्रः करकमलेन कोमलेन ।
प्रत्येकं हरिरपसारयाञ्चकार ।।
स्पर्शेन पाणिकमलस्य पुनः प्रकामम् ।
स्विद्यत्सु वक्त्रकमलेषु मृगेक्षणानाम् ।।
स्वेदापनोद कुशलो यदि नैष आसीत ।
ता एव चेलशकलैर्ममृजुर्मुखानि ।। १२४ ।।

श्रीकृष्ण के साथ रतिक्रीड़ा से श्रान्त होने के कारण उन गोपियों के मुखरूपी चन्द्रबिम्ब से पसीने का जल निकलने लगा। हँसने या मन्द मुसकान से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनका मुख उस समय बहुत ही सुन्दर दिखायी देता था। श्रीकृष्ण ने प्रेम से आर्द्र होकर अपने कोमल कर से प्रत्येक गोपी का स्वेद-जल पोंछ दिया। लेकिन श्रीकृष्ण के करकमल के स्पर्श से हरिणाक्षी स्त्रियों के मुखकमल से फिर भी पसीना निकलने लगा। उस समय पसीना दूर करने में अपने को समर्थ न पाकर श्रीकृष्ण ने ही वस्त्र के टुकड़े से पसीना पोंछ दिया ॥ १२४ ॥

लावण्यसारसरसानि विलासलास्य- ।
वैदग्ध्यमुग्धमधुराणि तदीहितानि ॥
कारुण्यमात्र पिशुनानि जगुः सुगीत ।
बन्धेन ता निज निजप्रतिभाकृतेन ॥ १२५ ॥

श्रीकृष्ण के मन के भाव उनके सौन्दर्य के रस से भरे हैं, नाना विलास लास्य के पाण्डित्य के कारण अति सुन्दर हैं, और गोपियों के प्रति दयाभाव प्रकाशित करते हैं, उन्हीं भावों को गोपियों ने अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार गीतों में बाँधकर उनका गान करना शुरू किया ॥ १२५ ॥

एवं श्रमहृतीरतिमहत्ती रतिकलाकलापजनिता नितान्तालस्यदस्यद-भाजः सलिललीलया लयावाप्तिविरताः कारयितुं ताभिः क्षिप्रमदाभिः प्रम-दाभिः समं समन्ततो मृदु मधुरं मधुरञ्जिभिर्मधुकरगायकैः सह गायन्तीभि-र्विमलकुमुदकमलाकमलाकरबन्धुनन्दिनीधारा ॥ १२६ ॥

धाराधरमहसा महसानन्देन तेन चिरपुलिनखेलाविलसत्करेणुभिः करे-णुभिः सह मदकलकलभेनेव समवजगाहे ॥ १२७ ॥

इस प्रकार अति परिश्रम से जड़ता उत्पन्न करने वाला वेग होने से उन्हें अति श्रम का आघात लगा, रति-कलाओं के कारण निर्मित उन रमणियों के श्रम का परिहार करने के लिए जललीला करने की इच्छा जाग्रत हुई। अति मदवाली उन मानवती स्त्रियों के चारों ओर मृदु मधुर गुञ्जारव करने भँवरे भी थे। उनके साथ गोपिकाओं को लेकर मेघश्याम श्रीकृष्ण ने सूर्यकन्या यमुनाजी की धारा में प्रवेश किया, जैसे उस उत्सव में बड़े आनन्द से धूलि में चिरकाल क्रीड़ा कर धूलि से व्याप्त शरीर वाली हस्तिनियाँ हाथी के बच्चे के साथ जल में प्रवेश करती हैं ॥ १२७ ॥

ततश्च ! वक्त्रैरम्भोरुहवरवनं दोर्लताभिमृणाली-।
श्रेणिर्वक्षोरुहकलशकैश्चक्रनाम्नां समाजः ॥
गत्या हंसीततिरतितरां हन्त जिग्ये वधूभिः ।
भास्वत्कन्यासलिलमलसं लम्बमानाभिराभिः ॥ १२८ ॥

उन गोपियों ने 'भास्वत्कन्या' (सूर्यकन्या) जमुना के जल में मन्द-मन्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सञ्चार करते समय अपने वदनों से सुन्दर कमलों के वन को, अपनी बाहुलताओं से कमलिनीश्रेणी को, अपने स्तनकलशों से चकवाक पक्षियों को और गति से हंस-समूह (हंसी समूह) को जीत लिया। यमुना जल की गति को भी जीत लिया ॥ १२८ ॥

वक्त्रैः स्वर्णसरोजमण्डलमयं नीरोपरिष्टान्नभो ।
वक्षोजैर्मदचक्रवाकमिथुनश्रेणीजुषोवीचयः ॥
दोर्भिश्चारुमृणालवल्लिवलिता आपस्तदासन् वधू-।
वृन्दे गच्छतिचित्रभानुदुहितुस्तत्कुक्षिदघ्नं जलम् ॥ १२९ ॥

उस वनितामण्डल ने जिस समय चित्रभानुदुहिता (सूर्यकन्या) यमुना में प्रवेश किया, उस समय उनकी कुक्षि तक ही जल था। उनके सुन्दर मुखों से सम्पूर्ण आकाश सुवर्णमय कमलों से व्याप्त हो गया, यानी उन्होंने इस आकाश भाग को जीत लिया, अपने स्तनों से मत्त चक्रवाक पक्षियों की पंक्ति से विराजमान तरंगों को जीत लिया, हस्तों से सुन्दर कमलतन्तुओं को जीत लिया यानी यमुना का जल भुजलताओं से सुन्दर मृणाल की लताओं से युक्त हो गया ॥ १२९ ॥

ततश्च। लब्ध्वा तासां तनुपरिमलान् पद्मिनीः प्रोज्झ्य भृङ्गैः ।
अभ्युद्यातैस्तरणितनयैवादरादुज्जगाम ॥
हंसैस्तुल्योड्डयनचपलैश्चामरत्वं प्रयातैः।
श्रान्ताः सर्वाः प्रणयरभसाद्वीजयामास सैव ॥ १३० ॥

उसके बाद गोपियों के शरीर की सुगन्ध से भृङ्ग कमलिनियों को छोड़ ऊपर उड़ने लगे और गोपियों के सम्मुख आने लगे। उस समय ऐसा लग रहा था मानो तरणितनया (सूर्यपुत्री) यमुना ही साक्षात् आ गयी हो; उड़ने वाले हंसों के सदृश दिखायी देने वाले चामर होने से हंसरूपी चामर से परिश्रान्त गोपियों को प्रेमावेश से हवा झलने लगी हो ॥ १३० ॥

भृङ्गैस्तासामुपरि परितो मण्डलीभूय सद्भिः ।
तत्पर्यन्तेष्वपि दिविषदां पुष्पवर्षैः पतद्भिः ॥
नीलं वातावधुतमभितः सारिमुक्तावलीकम् ।
शोभाहेतोरतनुत किमु व्योमलक्ष्मीर्वितानम् ॥ १३१ ॥

उस समय व्रजवनितामण्डल के ऊपर चारों ओर भ्रमर मण्डलाकार घूम रहे थे और उनके आसपास स्वर्गस्थ देव पुष्पवर्षा कर रहे थे। उस समय ऐसा लग रहा था मानो आकाशरूपी लक्ष्मी ने शोभा के लिए छत्र बना दिया है, जो वायु से हिल रहा है और उसके प्रान्त भाग में मोतियों की झूल लगी हुई है ॥ १३१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततश्च । अन्योन्यात्तैः करसरसिजैस्ताडयन्तीषु तोयम् ।
मध्ये कृत्वा दयितमभितो मण्डलत्वं गतासु ॥
तासूद्भूका (ता) स्तरणिदुहितू रोमहर्षा इव श्री- ।
कृष्णस्योरः परिसरमयुस्तोकतुङ्गास्तरङ्गाः ॥
अन्योन्यग्रथिताङ्गुलीकलिकयोः कृत्वाम्बु पाण्योः समा- ।
पीड्योच्चैर्जलयन्त्रवत् करभयोः प्रान्तेन निक्षिप्यता ॥
धाराभिर्मुहुरायताभिरनलावृन्देन सिक्तो हरिः ।
मन्ये मन्मथ वारुणास्त्ररहसा मूर्तेन विद्धो बभौ ॥ १३२ ॥

उसके बाद वह वनितामण्डल श्रीकृष्ण को मध्य में रखकर जल में वर्तुलाकार खड़ा हुआ और अपने कर-कमलों से श्रीकृष्ण पर पानी की वर्षा करने लगा । उस समय पानी में उठी छोटी-छोटी ऊँची तरंगें श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल के आसपास आने लगीं, मानो यमुना का रोमाञ्च ही हो । परस्पर ग्रथित अंगुलियों के साथ दोनों हाथों से पानी लेकर जलयंत्र की तरह करभ प्रान्त से ही जल फेंकने वाले उस वनितावृन्द ने श्रीकृष्ण के ऊपर मदनवरुणास्त्र ही वेग से फेंक दिया हो, ऐसा लगता है ॥ १३२ ॥

ततश्च । निःसंहारं तदिदमतनोर्वारुणास्त्रं विदित्वा ।
शक्तोऽप्यस्य प्रतिकृतिविधौ लीलया नारिमग्नः ॥
नीवीदाम्नां हरणकुतुकी तद्धृतिव्यग्रहस्तं ।
भग्नाः सर्वाः पुनरतितरामेक एवासिषेच ॥ १३३ ॥

वह मदनप्रेरित वरुणास्त्र वापस नहीं लिया जा रहा है, यह देखकर श्रीकृष्ण उसके प्रतिकार में समर्थ होते हुए भी लीलावश ही जल में निमग्न हो गये और कुतूहल से उन गोपियों के नीवी (फुफुती) बन्धन की रज्जुओं के हरण की चेष्टा करने लगे । उस समय सब गोपियों के हस्त रज्जु पकड़ने के लिए व्यग्र हो गये, तब श्रीकृष्ण अकेले ही गोपियों पर जल फेंकने लगे ॥ १३३ ॥

ततश्च । प्रत्येकं ताः सपदि पयसो द्वन्द्वयुद्धेन जित्वा ।
कृष्णेनास्मिन् पणितमखिलं हारमाकृष्य नीतम् ॥
पृष्ठं याता लघु लघुतरां पीडयित्वास्य बाहू ।
राधा सर्वं यदि धृतवती तामधावत्तदासौ ॥ १३४ ॥

इसके बाद श्रीकृष्ण तत्काल पानी में द्वन्द्व-युद्ध में प्रत्येक गोपी को जीतकर सबके हार खींचकर ले गये । यह देखकर श्रीराधा वेग से उनके पास पहुँची । श्रीराधा ने उनके बाहू में कमल से या हाथ से गुदगुदी कर वे हार ले लिये या वे हार छूट गये, तब श्रीकृष्ण उसके पीछे दौड़े ॥ १३४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आचिन्वानां कमलममलं क्वापि गाधेऽपि नीरे।
गम्भीरत्वाभिनयचकितां शङ्कया पङ्किलाक्षीम् ॥
दोर्भ्यां वक्षोभुवि सुनिविडापीडमुत्थाप्यमानां।
कान्तेनैनां सरसकुतुकं ताः समीक्षाम्बभूवुः ॥ १३५ ॥

कोई गोपी (राधा) निर्मल कमल खोजने के लिए गहरे पानी में गयी, लेकिन गहरे पानी से डर प्रदर्शित कर भीति से चकित हुई। शंका से उसके नेत्र भीति-ग्रस्त हो गये। तब भगवान् श्रीकृष्ण ने रस और कुतूहल से अपने दोनों हाथों से अपने वक्षःस्थल के पास दृढ़ता से निपीडन करते हुए उसे उठा लिया। सब गोपियों ने उनकी ओर बड़े विस्मय से देखा ॥ १३५ ॥

ततश्च कदाचन।
राधादेव्या चपलशकरीघट्टनाशङ्किताक्ष्या ।
कण्ठग्राहं भयचकितया गाढमाश्लिष्यमाणः॥
प्रत्याश्लिष्यन्ननुपधि मुहुः श्लाघमानः शफर्याः।
तत्सौहृद्यं हरिरतितरां सिष्मिये मोदमानः ॥ १३६ ॥

श्रीराधादेवी ने, जिनके नेत्र जलक्रीड़ा के समय पानी में चञ्चल मछली के वेग से जाते समय की फरफराहट सुनकर भीति से व्याकुल, चंचल हो गये थे, श्रीकृष्ण के कण्ठ में गाढ आलिङ्गन दिया। उस समय श्रीकृष्ण ने भी उस मछली की निष्कपट सुहृद-भावना की प्रशंसा करते हुए आनन्दित होते हुए प्रत्यालिङ्गन किया और हँस दिया ॥ १३६ ॥

एवं च कदाचन।

पद्मैः पद्मैः स्वयमवचितैस्तन्मृणालैर्मृणालैः।
लीलायुद्धं यदजनि मिथस्तत्र योषिन्मणीनाम् ॥
तासां तस्मिन्नजनि कुतुकं पश्यतस्तत्प्रमोदात्।
कृष्णस्यैव प्रहरणवशेनेव रुग्णं मनोऽभूत् ॥ १३७ ॥

वहाँ उन सर्वश्रेष्ठ स्त्रियों में उनके द्वारा स्वयं चुने हुए कमलों और कमल-तन्तुओं से लीलावश जो पारस्परिक युद्ध हुआ उससे श्रीकृष्ण को कुतूहल तो हुआ ही, किन्तु इसे आनन्द से देखकर उनका मन इस तरह (काम पीड़ा से) व्यथित हुआ, मानों शस्त्र से प्रहार हुआ हो ॥ १३७ ॥

ततश्च। कृष्णे कर्षति कोकयुग्ममबला दोर्भ्यां व्यधुः स्वस्तिकम्।
कण्ठे चारुमृणालमर्पयति ताश्चक्रुर्भुजान् भङ्गुरान् ॥
पद्मं जिघ्रति पाणिभिः पिदधिरे वक्त्रं जलक्रीडने।
ताभिस्तस्य बभूव सौरतरसः कोऽपीङ्गितैरिङ्गितैः ॥ १३८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जलक्रीड़ा के समय श्रीकृष्ण जब चक्रवाक पक्षियों के जोड़े को पकड़ते थे, तब उनमें स्तन का सादृश्य होने से मानो श्रीकृष्ण स्तन-स्पर्श का संकेत ही कर रहे थे। उसके निवारण के लिए गोपियों ने अपने स्तनों पर स्वस्तिक हस्त धारण किये। चक्रवाकों के कण्ठ में मृणालतन्तुओं को अटकाने की क्रिया में कण्ठालिङ्गन का इंगित था, तब गोपियाँ अपने हाथों से बना स्वस्तिक समाप्त कर अपनी भुजलताएँ टेढ़ी करने लग गयीं, मानो उन्होंने आलिङ्गन का निवारण किया। श्रीकृष्ण जब कमल की सुगन्ध लेने लगे, तब गोपियों ने अपने हाथों से अपना मुख ढक लिया, मानों अधरोष्ठ-पान का निषेध किया हो। इस तरह उन वनिताओं की क्रियाओं से श्रीकृष्ण के मन में सुरतक्रीड़ा के रस की सृष्टि हुई ॥ १३८ ॥

ततश्च। निर्लेपः कुचमण्डलो मृगदृशां हारावली निर्गुणा।
नेत्राम्भोरुहमञ्जनेन रहितं नीरागमोष्ठाधरम् ॥
निर्ग्रन्थिर्मणिमेखला कचततिर्मोक्षं गता काचन।
श्रीरासीद् द्विगुणैव सा घनरसे मग्नस्य योग्यं हितत् ॥ १३९ ॥

पानी में विहार करने से उन गोपियों के कुचमण्डल का अङ्गराग (लेप, उबटन आदि) निकल गया, हारों के धागे टूट गये, नेत्रकमल कज्जलहीन हो गये, अधरोष्ठ का रङ्ग चला गया, कमरधनी की गांठ खुल गयी, केशकलाप विशीर्ण (छिन्नभिन्न) हो गया; इस तरह गाढ़ रस में मग्न होने से उनकी शोभा गुणित हो गयी ॥ १३९ ॥

पद्मैः केशाभरणममलैरुत्पलैः कर्णभूषाम्।
हारं कृत्वा बिसलतिकया मेखलां शैवलेन ॥
क्रीड़ोपान्ते मणिमयशिरोभूषणादीनि तानि।
प्रेम्णा नार्यो दिनमणिभुवे प्रीतिदेयानि चक्रुः ॥ १४० ॥

जलक्रीड़ा के सम्भोग काल में वे सब स्वाधीन भर्तृका का होने के कारण उन्हें आभूषणों की आवश्यकता नहीं थी। कमल ही उनके केशाभरण हो गये, कान के कुण्डल भी कमल ही हुए, कमलतन्तु ही हार बने, जल की शेवाल ही कमरकाञ्ची बन गयी। गोपियों के पहले जो रत्नमय भूषण थे, क्रीड़ा के बाद उन्होंने वे सब प्रेमपूर्वक यमुनाजी को उपहार स्वरूप अर्पण कर दिये ॥ १४० ॥

उल्लास्य वामकरवारिरुहेण वारि।
झङ्कारिकङ्कणकलेन च दक्षिणेन ॥
संताड्य चारु जलमण्डुक वाद्यलीलाम्।
आतेनुरुत्सव समाप्तिफलामिवैताः ॥ १४१ ॥

बायें करकमल से पानी उछाल कर और झंकार करने वाले कङ्कणों से मधुर शब्द करती हुई दक्षिण हस्त से जल का संताडन कर (प्रहार कर) पानी के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मण्डूकों की तरह अथवा मण्डूकों के मण्ड्डुक नामक चर्मवाद्य की लीला को प्रदर्शित किया, मानो उत्सव के समाप्तिसूचक वाद्य की ध्वनि का अभिनय किया ॥ १४१ ॥

स्नानोत्तीर्णाः कनकनलिनीस्पर्धिभासो नितम्बम् ।
क्रान्त्वा स्रस्तैरविरतपयोबिन्दुनिष्यन्दभाग्भिः ॥
रेजुः केशैरथ हठहृतैरश्रुमुञ्चद्भिरुच्चैः ।
ध्वान्तैः पृष्ठानुसरणपरैरंशुमाला इवेन्दोः ॥ १४२ ॥

स्नान करने के बाद सुवर्ण कमलिनी को भी परास्त करने वाली कान्ति से युक्त वे गोपियाँ खुले केशपाश से सुशोभित हुईं। उनके केश नितम्बदेश से भी नीचे तक थे और उनमें से जलबिन्दुओं की धारा सतत बह रही थी, मानो चन्द्रकिरणों की माला अश्रुमोचन करने वाले और जबर्दस्ती से पकड़े हुए अन्धकार को पीठ पर लाद कर दूर ले जा रही हो ॥ १४२ ॥

अथ समयसमयमानसेवातत्परया रयापादितादरया, योगमाययागमायया समुपाहृतानि, तत्कालोचितलोचितरमणीयानि, यानि वसनालङ्कारानुलेपनादीनि स्वप्नोपलब्धानीव, तानि सेवित्वाचित्वा, सकलसुन्दरतादर ताण्डवित कुण्डलाः, सरसकलावलावण्यश्रिय इव, मूर्तिमत्योमत्योढमहामहाधौता इव माधुर्यो धुर्योत्तमाः, प्रणयभरस्य रस्यतमत्विषो, ललितोपवनकुञ्जवराजिरेषु, मदकल कलहंस कारण्डवादिवादिवर्गस्य मण्डलीभूय भूय एव, रसिकघटामुकुटालङ्कारनीलमणिवरेण, कौस्तुभेन विलसदुरसा, रसाम्बुधिनाधिनाथेन सह सहर्षमुपविविशुर्गोपरमणीमणीश्रेणयः ॥ १४३ ॥

इसके पश्चात्, प्रत्येक समय सम्मान और सेवा के लिये तत्पर और वेगपूर्वक आदर करने वाली योगमाया द्वारा, जिसका शुभफल अगम्य है, लाकर दिये गये उस काल के अनुकूल वस्त्र, अलङ्कार, अङ्गराग आदि नाना वस्तुओं को गोपियों ने इस प्रकार स्वीकार किया, मानो स्वप्न में ही सब कुछ उपलब्ध हो रहा हो। उनके कानों के कुण्डल इस प्रकार हिल रहे हैं, मानो सम्पूर्ण सुन्दरता ही किञ्चित् ताण्डव नृत्य कर रही है, वे ऐसी दिख रही हैं जैसे रसपूर्ण सर्वकलाओं ने ही शरीर धारण किया हो, बुद्धि में धारण किये हुए महोत्सव में जैसे स्नान किया हो, मधुरता की जैसे मूर्तिरूप धाराएँ हों, प्रेमावेश से जिनकी कान्ति अधिक सरस लग रही है ऐसी उन सब गोपियों ने इस प्रकार मण्डल बनाया जैसे सुन्दर उपवनों के प्रान्त में मद से मधुर शब्द करने वाले हंसकारण्डव पक्षी इतस्ततः घूम रहे हैं। रसिक समाज में सर्वश्रेष्ठ, मानो नीलवर्ण रत्न हों, भगवान् श्रीकृष्ण के साथ, जिनके वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि हैं और जो रस के सागर हैं, गोपस्त्रियों ने आनन्द से श्रेणीरूप प्रवेश कर मण्डलाकार आसन जमाया ॥ १४३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्रानिन्ये मणिमयघटैर्देवताभिर्वनीनाम् !
स्वादुः स्वच्छः पुरुपरिमलः कौसुमः शीधुपूरः ।
यद्गन्धान्धैर्मधुपनिकरैः सर्वतो घूर्णमानैः ।
ज्योत्स्नाजालेऽप्युपचित इव व्योम्नि गाढान्धकारः ॥ १४४ ॥

वहाँ देवताओं ने रत्नाङ्कित घटों से अति सुगंधित और रुचिकर फूलों से बना हुआ मधु मदिरा-रस उपस्थित कर दिया। इसकी सुगन्ध से उन्मत्त भ्रमर चारों ओर चक्कर लगाने लगे, जिससे सब जगह चन्द्र-प्रकाश फैला होने पर भी आकाश में गाढ अन्धकार छा गया ॥ १४४ ॥

रजतजलवज्ज्योत्स्नाजालोज्ज्वले पुलिनोदरे ।
स्फटिकचषकश्रेण्यस्तासां पुरः परिरेजिरे ॥
नयनविषयीभावं हित्वा परस्परसत्विषः ।
करकिशलयस्पर्शेनैव स्वबोधविभाविकाः ॥ १४५ ॥

उस यमुना-पुलिन में चन्द्र का प्रकाश इस प्रकार फैला हुआ था, जैसे रौप्य रस जैसा जल सर्वत्र फैला हो। उस पर क्रम से (गोपियों के) आगे स्फटिक मणि के चषक रखे हुए थे। चन्द्रप्रकाश और स्फटिक-चषक समान कान्ति वाले होने से वहाँ चषक का ज्ञान हाथ लगाने से ही होता था ॥ १४५ ॥

तामेतां मधुपानसामग्रीमग्रीयां सामग्रीमिव, मनोभवामोदकमोदकदम्बस्य समालोकमानो मानोन्नतधीः, सरसमना रसमनायास सिद्धम् तं बहुमानयन् नयन्नपि, तत्र लालसां सालसां साधीयसीं मदमाधुरीमाधुरीणानाम्, चित्तविभ्रमैर्विभ्रमैरुपचिताम् चालोकयितुं मधूनि ॥ १४६ ॥

यहाँ मधुपान की जो सम्पूर्ण तैयारी थी, वह जैसे मदन के मन को आनन्द देने वाली थी, वह आनन्द की ही साङ्गोपांग तैयारी थी। उस सामग्री को भली प्रकार देखते हुए, रस से परिपूरित मन से उस अयत्नसाध्य रस को श्रेष्ठ मान देते हुए भी उस रस में अतिलालसावाली, मदमाधुर्य से भरी हुई, अलसता से सुशोभित गोपी को अनेक चित्रविचित्र भ्रमविलासों से पूर्ण देखने के लिए उसे मदपूर्ण पेय देते हुए ॥ १४६ ॥

एकैकस्यै स्फटिकचषकैः पूरयित्वा प्रदातुम् ।
स्वेच्छापूर्वं नयत सुदृशो यूथपायै विभज्य ॥
इत्येतासां प्रियसहचरीः कौतुकान् प्राह कृष्णः ।
तास्तस्यांशं तदभिमुखतो न्यस्य चक्रुस्तथैव ॥ १४७ ॥

(तथा) एक-एक यूथप गोपी को स्फटिक चषक में विभाग से भरकर देते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुए श्रीकृष्ण ने यूथेश्वरियों की प्रिय सखियों से कहा,—तुम विभाग करके स्वेच्छा से जितना चाहो उतना मद ले जाओ। उन्होंने भी श्रीकृष्ण का अंश रखकर वैसा ही किया ॥ १४७ ॥

एवं सति—कर्पूराभे किरणसुधया प्रोक्षिते शीतधाम्नः।
प्रत्यामृष्टे कमलकुमुदामोदिना मारुतेन ॥
प्रादुर्भूतः स खलु शुशुभेसैकते भानुपुत्र्याः ॥
प्रत्यासन्ने सुरतसमरे वीरपानप्रमोदः ॥ १४८ ॥

कपूर की तरह धवलवर्ण, चन्द्रकिरणों से धोये हुए और कमल कुमुदों की सुगन्ध से पूरित वायु से स्पृष्ट पुलिन में और सूर्यपुत्री यमुनाजी के सान्निध्य में आसन्न सुरत-युद्ध में वीरों के मधुपान का आनन्द प्रदर्शित हुआ ॥ १४८ ॥

प्रतिचषकं प्रतिबिम्बितशशिबिम्बं विलसदुत्पलामोदम्।
उपरिभ्रमदलिललितं पुरतस्तासां रराज माध्वीकम् ॥ १४९ ॥

प्रत्येक गोपी के आगे रखे हुए चषक (प्याले) में चन्द्र का प्रतिबिम्ब था, प्रत्येक प्याले में कमल की सुगन्ध थी और ऊपर भँवरे घूम रहे थे, इस प्रकार यह 'माध्वीक' सुशोभित था ॥ १४९ ॥

आदौ पाने नयनयुगयोः शोणिमानं द्वितीये।
वाग्वैवश्यं व्यधिकरणतां हासभीत्योस्तृतीये ॥
द्रष्टुं पश्चाद्विहसितुमपि प्राणनाथं तथान्याः।
पानक्रीडापरिषदि दधे पातुमिच्छां न काचित् ॥ १५० ॥

मधु के प्रथम पान से नयनों में आरक्तता आती है, उसके अनन्तर पुनः पान करने पर बोलने में वाणी की विवशता आती है तथा तीसरे पान से हँसने के बजाय रोने या डर लगने और भीतिप्रद वस्तु पर हँसने या निर्भय रहने की स्थिति रहती है। यह लीला देखने की इच्छा से कोई गोपी पीती नहीं, तथा मधुपान किये हुए प्राणनाथ को हँसने और उनकी सेवा करने के लिए बिना पीये ही रह जाती है ॥ १५० ॥

आतन्वाने अमृतमधुनोर्व्यत्ययेनैव मैत्रीम्।
चन्द्राम्भोजे इव वदनयोर्मण्डलं कारयन्तौ ॥
अन्योन्य श्रीवदन चषकोपात्तमन्योन्यदत्तम्।
राधाकृष्णौ सममपिबतां साधरोष्ठोपदंशम् ॥ १५१ ॥

मधुपान के बाद राधा-कृष्ण दोनों ने अधर मधु का पान किया। उस पान में एक-दूसरे का बदन ही पान पात्र और अधरोष्ठ ही बीच में पान-वस्तु थी। राधा का मुखचन्द्र, श्रीकृष्ण का मुख कमल-परस्पर अधर पान करते हुए कृष्ण मुख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कमल का मधु कृष्ण ने राधा मुखचन्द्र में अर्पण किया, राधा मुखचन्द्र का अमृत कृष्णमुखकमल में समर्पित हुआ। इस तरह अमृतमय चन्द्र मधुपूर्ण हुआ और मधुपूर्ण कमल अमृतमय हुआ ॥ १५१ ॥

एवं प्रवृत्ते मधुपानमहे महेभ्यो मधुरिममणिभिः, संमदसिन्धुरसौ, मदसिन्धुरसौभाग्यः सिन्धुरीभिरिव, ताभिर्मधुमदमदनमदतोऽनमदतोदमना मत्तलीलालीलवितधीर धीर इव सन्नपि सन्नपिपासानां पूर्वपानेनैव क्षिप्रमदानां प्रमदानां मदाविलविलसितां सखीभिः सह वाचं वाचं यम इव शुश्राव ॥ १५२ ॥

इस प्रकार मधुपान का महोत्सव आरम्भ होने पर महावैशाली मानो आनन्दसागर हो, मदोन्मत्त हाथी की तरह सौभाग्यशाली, मदिरा और श्रम का मद चढने से जो नम्र नही हैं, मन पर अंकुश नहीं हैं, उन्मत्त की तरह लीलाओं से जिनकी वुद्धि स्खलित हो गयी है ऐसे श्रीकृष्ण प्रथम पान से मत्त तरुण स्त्रियों की अपनी सखियों के साथ मदभरी विलासिता को वाणी स्वयं मौन रहकर सुनने लगे ॥ १५२ ॥

आलीन्दुर्मे पिबति मधु किम् ? पीयतामालि सार्धम् ॥
स्तेनोऽयं यत्तव मुखरुचां कण्ठलग्गेन भाव्यम् ॥
दन्तैश्च्छेद्योऽमृतमयतया सत्यमस्यावशिष्टम् ।
नो पास्यामीत्यथ मधुमती पाणिना मध्वपास्थत् ॥ १५३ ॥

एक प्रमदा मद्य का प्याला लेकर मधु पीने लगी। उसमें चन्द्र का प्रतिबिम्ब देखकर वह सखी से कहती हैं, हे आलि (सखी), मेरा मधु चन्द्र पी रहा है क्या ? तव सखी ने उत्तर दिया, चन्द्र के साथ ही पी जाओ, क्योंकि उसने तुम्हारी मुखकान्ति चुरायी हैं, अतएव वह दण्डाई है। प्रमदा पुनः कहती हैं, यदि मैं उसे पी जाऊँ तो वह कण्ठ में अटक जायगा। सखी कहती है, उसे दाँतों से काट देना, तोड़ देना, चबा जाना, क्योंकि वह अमृतमय है। तब प्रमदा पुनः कहती हैं, सच्ची बात है, किन्तु मैं इस चन्द्रमा का पीया हुआ, अवशिष्ट झूठा नहीं पीऊँगी ॥ १५३ ॥

हा कष्टं द्यौः प्रपतति कथं हन्त घूर्णते भूः ।
नाथ त्वं मां धधर पतता (पपता) कम्प मे गात्रयष्टिः ।
इत्थं वृद्ध स्खलित ह्सितैरक्षरैर्व्याहरन्ती ।
त्रासात् काचिद् भुजलतिकया कृष्णकण्ठं दधार ॥ १५४ ॥

कोई वनिता मद्यपान से मत्त, बेभान होकर कहती है, हाय-हाय, बड़ा कष्ट है, आकाश ही गिर रहा है, अरे, भूमि भी घूम रही है। हे नाथ ! तुम मुझे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धारण कर, पकड़ कर रखो, मैं गिर रही हूँ, मेरी तनुलता काँप रही है। इस प्रकार बोलते समय मद के कारण कभी अक्षरों की पुनरावृत्ति होती है, कहीं विपरीतता परिलक्षित होती है तो कहीं वह अक्षर छोड़कर बोलती है और भय के कारण अपनी बाहुलता से श्रीकृष्ण के कण्ठ को पकड़ लेती है ॥ १५४ ॥

भ्राम्यतामुपरि भृङ्गगणानां वीक्ष्य बिम्बमथ कल्कविकल्पात् ।
वल्लभाय ददती मधुनिन्ये स्वाञ्चलेनचषकाच्चषकान्तः ॥१५५॥

मधु के ऊपर भँवरे घूम रहे थे। उनका प्रतिबिम्ब (चषक की) मदिरा में पड़ रहा था। उसे देखकर गोपी ने समझा कि यह मदिरा का कल्क (मल) नीचे बैठ गया है। उसने अपने वस्त्र के अञ्चल से पोंछ कर, छानकर उसे दूसरे प्याले में डाल दिया ॥ १५५ ॥

एवं मधुमदाधिका राधिका रामणीयकाधिकारा मत्तलीलां प्रथयताय-तानन्देन सह वनमालिनालिनाम्ना सम्बोधितेन तेन च तदनुवदता किञ्चिद-वादीत् ॥ १५६ ॥

इस प्रकार मदिरा-मद से भारी मत्त हुई श्रीराधिका ने श्रीकृष्ण को अपनी सखी के नाम से सम्बोधित किया और जब उन्होंने प्रत्युत्तर दिया तो वह किञ्चित् असम्बद्ध बोलने लगीं ॥ १५६ ॥

आलि प्रेयन् हरिरसि शठः कृष्ण मे संप्रसीद ।
श्यामे स त्वामभिसरति किं नाथ मे त्वं ह्युपास्यः ॥
इत्यन्योन्य प्रकृतिविकृतिभावतोऽनन्वितार्थम् ।
व्याजल्पन्तौ कुसुमधनुषं निन्यतुर्मूढभावम् ॥१५७॥

मधुमद से मत्त होकर श्रीराधा श्रीकृष्ण को सम्बोधन करती है—हे आलि (हे सखी)! उसके बाद श्रीकृष्ण श्रीराधा को 'हे प्रेयन्' (प्यारे) ऐसा पुल्लिंगी सम्बोधन करते हैं। तब फिर श्रीराधा श्रीकृष्ण को कहती हैं—तुम हरि, यानी हरण करने वाला स्त्रीरूप चोर हो, शठ, वञ्चक हो। इस पर श्रीकृष्ण ने राधिका के प्रति कहा, हे कृष्ण, तुम प्रसन्न हो जाओ। बाद में रुष्ट राधा को पूछना चाहिए था कि वह स्त्री तुम्हारा अभिसरण करती है क्या ? लेकिन वह 'श्याम' के बदले 'श्यामे' ऐसा स्त्रीलिंग सम्बोधन करती है और कहती है—वह पुरुष तुम्हारा अनुसरण करता है क्या ? बाद में श्रीकृष्ण को कहना चाहिए था—हे नाथे, जबकि वे 'हे नाथ' ऐसा पुल्लिग सम्बोधन करते हैं और कहते हैं—तुम ही मेरे उपास्य देव हो। इस प्रकार परस्पर स्त्री-पुरुष प्रकृति को बदलकर विकृत रूप में असम्बद्ध बोलने वाले राधा-कृष्ण ने मदन को मूढ़ बनाया, विमुग्ध कर दिया ॥ १५७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाकं याते मधुमदरसे प्राप्तसंस्कारशेषे ।
वृद्धिं याति स्मरभुजबले चोभयोर्मिश्रभावात् ॥
रम्या रामावितति रसकौ प्राणनाथेन साकम् ।
दीर्घोद्रेकां सुरतकलया यापयामास रात्रिम् ॥ १५८ ॥

मधु का मद परिपक्व होने पर भी मद का संस्कार अभी शेष है, ऐसी अवस्था में मदन का बल बढ़ गया, यानी मत्तता अभी शेष है । मद और मदन दोनों के सम्मिश्रण में उस रमणीय गोपाङ्गना-श्रेणी ने अपने प्रियतम के साथ अत्यासक्ति-पूर्वक उस लम्बी रात्रि को सुरत कला में ही व्यतीत किया ॥ १५८ ॥

सान्द्रानन्दकलेवरेण रसिकेनानन्दिनीभिः समम् ।
स्वाभिः शक्तिभिराभिरेव परितो गोपाङ्गनानामभिः ॥
इत्थं काव्यकथायथार्थविधये माध्वीकपानादिकाम् ।
साध्वीहां सुरतोत्सवं च दधता कामः कृतार्थीकृतः ॥१५९॥

श्रीकृष्ण का शरीर वस्तुतः घनानन्दस्वरूप है । उस रूप से, उसी की स्वरूप-भूत ह्लादिनी शक्ति और इतर शक्तियाँ गोपाङ्गनाओं के रूप में विराजमान थीं । उन्हींके साथ काव्यकथाओं के वर्णन को यथार्थ रूप में परिणत करते हुए, मदिरा-पान आदि अनेक इच्छाओं की पूर्ति के साथ सुरतोत्सव भी सम्पादन कर कामदेव को कृतकृत्य कर दिया ॥ १५९ ॥

अथ गगनविटङ्कपारावतेनेव पीयूषदीधितिना मुक्तावशिष्टासु कतिपय-थीषु लाजास्त्रिव दिविषद्वधूभिः कुसुमधिया कुसुमैः सह वृष्ट परिशिष्टासु ॥ १६० ॥

उसके बाद आकाशरूपी कपोतपालिका के कपोतों में से एक चन्द्ररूपी कपोत द्वारा भक्षण करने के बाद अवशिष्ट कुछ लाजाएँ (खीलें) हों, ऐसे, अथवा देव-स्त्रियों द्वारा पुष्पवर्षा के समय फूलों के साथ फूल समझ कर फेंके जाते वक्त बचे हुए हों, ऐसे कुछ (तारकागण) अवशिष्ट रह गये ॥ १६० ॥

रजनिरमण्या रजनीरमणेन त्रोटितस्य देवच्छन्दस्य निपत्य, विसृमराणां मुक्तानां पुनर्ग्रथनाय, समाहृतानां शेषभूतासु कियतीषु मुक्तास्विव परि-मेयतां गतासु तारासु ॥ १६१ ॥

ये-तारकाएँ ऐसी दिखायी देती थीं, मानो रात्रिरूपी नायिका के अपने रमण चन्द्र के साथ विहार करते समय उसका तोड़ा हुआ 'देवच्छन्द' (सौ लड़ीवाला हारविशेष) ही विश्लथ हुआ और उसके मौक्तिक पुनः ग्रथन के लिए ले लिये गये और कुछ ही शेष रह गये हैं (प्रभातकाल) ॥ १६१ ॥

द्विपात् द्वीपान्तरं च कलतालधौतमयेन गगन पयोधिमध्ये, चलनप्रा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिकूल्यकारिणा मरुतेव तेन रासविलासेन, चिरं विलम्बय्य रक्षितेन चन्द्रमः पोतेन चिरात् पुनः पुनश्चलता, प्रतीचो दिग्द्वीपनिकटे समासाद्यमाने सति, विभावरी वरीयसा भविष्यद्भगवद्विरहदुःखेनेव शरीरपरित्यागाय कृतोद्यमेव यद्यजनिष्ट तदा तदाकलनखेदेव खेदेववधूततिरपि तिरोऽतिरोपित हृदयशल्येव बभूव ॥ १६२ ॥

चन्द्र मानो रौप्यमय आकाशरूपी सागर में चलने वाला पोत है, जो एक द्वीप से दूसरे द्वीप तक जाता रहता है। बीच में रासविलास रूपी प्रतिकूल वायु ने मानो उसे रोक रखा था। चलते-चलते जब वह चन्द्ररूपी पोत बहुत देर बाद पश्चिम दिशा के द्वीप के निकट आया, तब रात्रि भी ऐसी दिखायी देने लगी मानो विरह दुःख से उसने शरीरत्याग का उद्योग-सा किया हो; यह देखकर आकाश की देवस्त्रियों की श्रेणी भी ऐसी दुःखी हुई, जैसे कि हृदय में तिरछा बाण लगने से दुःख होता है ॥ १६२ ॥

एवं विलासविरतौ निशोऽवसानेऽतिदीर्घदीर्घायाः ।
सपदि पतिम्मन्यानां पुनरागमन् योषितः सदनम् ॥ १६३ ॥

इस प्रकार अतिशय लम्बी रात्रि समाप्त होने पर विलासक्रीड़ा बन्द हुई और वे स्त्रियाँ अपने को उनके पति समझनेवाले पतियों के घर तत्काल आ गयीं ।१६३।

तेऽपि च न पतिम्मन्यास्ताः सुदृशः स्माभ्यसूयन्ति ।
छाया रूपतया ताः पार्श्वस्था इत्यमंसताविरतम् ॥
परपुरुषत्वं तस्य न परनारीत्वं च नो तासाम् ।
परपुरुषत्वं तस्मिन् परनारीत्वं च तास्वेव ॥ १६४ ॥

वे गोपाङ्गनाएँ घर छोड़कर वृन्दारण्य में गयीं और उन्होंने श्रीकृष्ण के साथ क्रीड़ा की, इस कारण उनके पति घर में उन पर रुष्ट नहीं हुए। उन्हें ऐसा ही प्रतीत होता था कि वे सतत उनके पास ही हैं, क्योंकि छाया रूप में पास में रहने से उनका अभाव नहीं प्रतीत हुआ। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं शक्तिमान् हैं और वे स्त्रियाँ ह्लादिन्यादि रूप शक्ति होने से अभिन्न हैं। उनमें परस्पर परकीयता नहीं है। लोकदृष्टि से वे परस्त्रियाँ और वह परपुरुष है। परकीय स्त्री में परकीयता के कारण जो रसाभास का वर्णन है, वह प्राकृत नायक की दृष्टि से धर्माधर्मातीत कृष्ण-गोपियों के बारे में नहीं ॥ १६४ ॥

त्रिक्रीडितमिदममलं तस्य च तासां च सर्वदा सिद्धम् ।
लोकानुग्रहहेतोः केवलमवनौ प्रकाशमायातम् ॥ १६५ ॥

यह उनकी रासलीला अप्रकट प्रकाश में (अव्यक्त में) सर्वदा सिद्ध है। (नित्यरास) केवल लोगों पर अनुग्रह करने के लिए पृथिवी पर प्रकट रूप व्यक्त की गयी ॥ १६५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकर्णयति य एतत् कर्णयुतः कर्णरमणीयम् ।
यो वर्णयति च न तयोः सौभाग्यं स्याद्वचोविषयः॥ १६६ ॥

जो यह श्रवणरमणीय कृष्णचरित्र दत्तचित्त होकर सुनेगा और जो इसका वर्णन करेगा, उन दोनों के सौभाग्य वर्णन वाणी से परे हैं, वाणी से वर्णन अशक्य हैं ॥ १६६ ॥

॥ इति आनन्दवृन्दावनचम्प्वाम् विंशस्तवकः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ श्रीकृष्णभावनामृते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथ श्रीकृष्णभावनामृते

ऊनविंशः सर्गः

प्रसूनचापः स महापराधी।
प्रापाधिकारं तव काननेऽस्मिन् ॥
त्वां मार्गयन्तीः सुकुमारगात्री-
र्हा मार्गणैर्भेत्स्यति मत्सखीस्ताः ॥ १ ॥

इस तात्पर्य से कि प्रेम से श्रीकृष्ण के साथ सखियों का सम्भोग हो जाय, श्रीराधा युक्ति-रचना करती हैं। महान् अपराध करने वाला मदन फूलों का धनुष लेकर तुम्हारे इस वन में अधिकार पा गया है। तुम्हें खोजती हुई सुकोमल अवयव वाली मेरी सहचरियों को वह वाणों से विद्ध करेगा ॥ १ ॥ (युग्मक)

तत्त्वं त्रातुमितोऽर्हसि प्रियतमेत्युक्तोऽच्युतो राधया।
तां प्रत्याह समाश्वसिह्यनुपमस्नेहामृतस्नापिते ॥
यो मां मृग्यतिमात्रमत्र तमहं मृग्यन् हृदैनादधा।
म्येतन्मे व्रतमव्रणं तदिह ताः शस्तैः करिष्येऽङ्किताः ॥ २ ॥

इसलिए हे प्रियतम ! यहाँ तुम उनकी रक्षा करो। राधा का इस प्रकार का कथन सुनकर श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—सखियों के प्रति अतुलनीय प्रेम करने वाली हे राधे ! अति प्रेम से जो मुझे खोजता है, उसे मैं हृदय में धारण करता हूँ, यह मेरा अभङ्ग व्रत है। इसलिए मैं तुम्हारी सखियों को कुशल-मंगल से अलंकृत करूँगा ॥ २ ॥

इत्यन्यत्र गते हरौ परिजनैः कैश्चिन्निदिष्टै रसा-।
नेपथ्यानि पुरेव साधुरचितान्यङ्गेषु तस्यास्तथा ॥
नूत्नं तल्पमकारि पौष्पमपिताः कृष्णोपभुक्ता यथा।
पश्येयुर्ललितादयो विधुमुखीं तां वाससज्जामिव ॥ ३ ॥

इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण के अन्यत्र जाने पर श्रीराधा की आज्ञा से कुछ दासियों ने प्रेम से श्रीराधा के शरीर पर नेपथ्य रचना (वेषभूषा) की। उसी प्रकार फूलों की शैया भी नयी बनायी, जिससे ललितादि सखियाँ, चन्द्रानना राधा यह समझ लें कि यह वासकसज्जा ही है, जिसका उपयोग श्रीकृष्ण ने किया है ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथागतास्ताः कुटिलभ्रुवः सखी ।
राधाभिनीयैव विषादमब्रवीत् ।।
प्रेयान् नायान्मम किं ततोऽसुभिः ।
तन्वाथवा भूषितया किमेतया ।। ४ ।।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने जो वञ्चना की, उसकी कारणीभूत राधा को जान-कर भ्रुकुटियाँ टेढ़ी कर आनेवाली सखियों को देखकर श्रीराधा कहती हैं—वह प्रियतम श्रीकृष्ण जब नहीं आये, तो मेरे प्राणों का क्या उपयोग ? वासकसज्जा, इस सुभूषित तनु (शरीर) का क्या उपयोग ? ।। ४ ।।

उपालिप्सूरालीः पुनरुपसृता वीक्ष्य पिहित- ।
स्मिता चिल्लीवल्लीं दर चटुलयन्त्याह सुतनुः ।।
अहो ! कष्टं किं धः क्षतमजनि बिम्बाधर कुचे ।
भुजङ्गं मृग्यन्त्यः कमविशत वा गह्वरवरम् ।। ५ ।।

वञ्चना की इच्छा से (फँसाने के विचार से) पुनः अपने पास आयी सखियों को देखकर, हँसी दबाकर, भ्रुकुटियाँ किञ्चित् चलाती हुई सुन्दर शरीरवाली राधा कहती है,—हे सखियाँ ! बड़े दुःख की बात है कि आपके बिम्ब सदृश (पक्व तुण्डी की तरह लाल) नीचे के होठों और स्तनों पर घाव कैसे हो गये हैं ? क्या आप साँपों (भुजङ्ग = सर्प और विट, जार) को खोजती हुई कहीं बड़े जंगल की गुफा में तो नहीं चली गयीं, जिससे कण्टकादि के लगने से ये घाव हो गये हैं ? ।। ५ ।।

भुजङ्गं स्वाधीनं सुमुखि जनतां दंशयसि य- ।
तदास्तां ते ख्यातं, व्रजभुवि यशो मा हस पुनः ।।
अहं चेद्व्याख्यास्ये किमपि चरितं तत् सपदि ते ।
गिरं तां ह्रीर्देवी विरमयितुमाविर्नभविता ।। ६ ।।

हे सुन्दर वदन वाली राधिके ! तुम्हारे वश में हुआ जो भुजङ्ग (साँप, और कृष्ण) है, उसके द्वारा तुम लोगों का दंशन करवाती हो । तुम्हारी यह कीर्ति प्रसिद्ध है एवं गोकुल में फैली हुई है । उसे उसी रूप में रहने दो । हम लोगों को हँसना नहीं, क्योंकि यदि मैं उस चरित्र का विवेचन कर दूँ, जो कि लोकविलक्षण है, तो फिर मेरी वाणी को रोकने के लिए क्या लज्जा देवी का प्रादुर्भाव नहीं होगा ? ।। ६ ।।

इत्येव यावल्ललिता बभाषे ।
मध्येसभं तावदुपेत्य कृष्णः ।।
प्राहालयो वच्मि चरित्रमस्याः ।
चित्रं यदेवाद्यतनं सुरस्यम् (सुरम्यम्) ।। ७ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सखियों की इस सभा में जब ललिता बोल रही थी, तब श्रीकृष्ण वहाँ उपस्थित हुए और बोले, हे सखियो ! अति रसमय, रमणीय राधा का चरित्र मैं आपके सामने रखता हूँ ।। ७ ।।

आगत्यैव प्रकटमनयायाच्यत प्रेष्ठ मह्यम् ।
देह्याश्लेषं मदधरसुधां निर्विवादं गृहीत्वा ।।
कामाग्निर्मे ज्वलतिहृदि तं साधु निर्वापयेति ।
श्रुत्वैवाहं न्यपतमधिकं विस्मयाम्भोधिमध्ये ।। ८ ।।

श्रीकृष्ण ने कहा—इस राधा ने मेरे पास आकर स्पष्ट रूप से याचना की कि हे प्रियतम ! निःसंकोच होकर मेरे अधरोष्ठ का अमृतपान करो, मुझे गाढ आलिङ्गन में ले लो, मेरे अन्तःकरण में कामाग्नि जल रही है, उसे अच्छी तरह शान्त करो । इस प्रकार अपनी वक्रता छोड़कर कही गयीं राधा की बातें सुनकर मैं आश्चर्य रूपी समुद्र में डूब गया ।। ८ ।।

तावद्धैर्यं ह्रियमपि बलाद्यामुने सान्द्रपङ्के ।
मग्नीकृत्य स्वयमति मुदाऽऽलिङ्ग्य तल्पे निवेश्य ।।
निर्जित्याहं वितनुयुधि निर्यापितोऽस्मान्निकुञ्जात् ।
युष्मानेवाश्रयमथ मुखं सावृणोदञ्चलेन ।। ९ ।।

इतने में धैर्य और लज्जा को यमुना जी के घने कीचड़ में डुबोकर स्वयं मुझे जबरदस्ती आलिङ्गन दिया, शैया पर सुलाकर मदन-युद्ध में मुझे जीतकर इस लताकुञ्ज से भगा दिया । उस समय मैंने आप लोगों का ही आश्रय लिया । कृष्ण की यह बात सुनकर राधा ने लज्जा से अपना मुँह आँचल से ढक लिया ।। ९ ।।

ललिता आह—

ब्रूषे मृषा वा ललिते रवेस्तत् ।
पृच्छात्र दत्त्वा शपथं सखीं स्वाम् ।।
तदादृता साह, न वेद्मि मोहात् ।
तमालमुद्दिश्य यदप्यवोचम् ।। १० ।।

पूर्व श्लोक का कथन सुनकर, ललिता ने कहा,—हे कृष्ण ! तुम झूठ बोल रहे हो । तब कृष्ण ने कहा,—हे ललिते ! सूर्य की शपथ दिलाकर अपनी सखी से पूछो । तब उसी प्रकार ललिता के पूछने पर श्रीराधा ने कहा,—मोहवश तमालवृक्ष को उद्देश्य कर मैंने जो कुछ कहा, वह अब स्मरण नहीं आ रहा है ।। १० ।।

हास्यप्लुतास्यनलिनासु सखीषु कृष्णः ।
प्रावोचदर्थनमिदं निभृतं न चित्रम् ।।
सिद्धाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेणे-।
त्यस्या गिरं सदसि तां नहि विस्मरामः ।। ११ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधा की बात पर सखियों के मुख पर और नेत्रों में हास्य देखकर श्रीकृष्ण ने कहा,——एकान्त में श्रीराधा द्वारा स्वयं की गयी प्रणय-याचना आश्चर्यकारक नहीं है, क्योंकि महारास के समय गोकुल की सुन्दरियों के समाज में उसका यह वाक्य कि "हे कृष्ण ! तुम अपने अधरामृत की वर्षा से हम लोगों के शरीर का सिञ्चन करो," मैं नहीं भूल सकता ।। ११ ।।

वंशीं लभेय यदि तामिह वादयेयम् ।
उन्मादयेयमभिकृष्य समानयेयम् ।।
स्वस्वप्रकृत्यननुरूप चरित्ररूप ।
वाचस्तदाहमपि वो रचयेयमग्रे ।। १२ ।।

इस पर श्रीराधा कहती हैं कि मुरली के कारण ही यह स्वभाव-परिवर्तन हुआ है। वह कहती है कि यदि मेरे हाथ में बाँसुरी आ जाय और उसे मैं बजाऊँ, तो उसे बजाकर तुम लोगों को मद से उन्मत्त बनाऊँगी और उसी उन्माद में तुम लोगों को खींचकर यहाँ लाऊँगी। उस समय मैं तुम लोगों को ऐसा बना सकती हूँ कि तुम अपनी-अपनी प्रकृति के स्वभाव को छोड़कर, उस स्वभाव के विरुद्ध आचरण करने लगोगी या वैसी बोलने लगोगी ।। १२ ।।

इत्युक्तवत्यै निजवल्लभायै ।
कृष्णस्तदैवोमिति वंशिकां स्वाम् ।।
दत्वा ततोऽगादपरत्र ताभिः ।
सार्धं सखीभिः कुतुकं विधित्सुः ।। १३ ।।

प्रियतमा राधा के ऐसा कहने पर श्रीकृष्ण ने कहा, ठीक है। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण श्रीराधा को अपनी बाँसुरी देकर विलास-कौतुक करने के लिए इतर सखियों के साथ दूसरी जगह चले गये।। १३ ।।

अथ जगावधरार्पितवंशिका ।
विधुमुखी मधुरं हरिवेशभाक् ।।
हरिरगात् प्रमदात् प्रमदाकृतिः ।
परिवृतो ललितादिभिरालिभिः ।। १४ ।।

यह जानकर कि श्रीकृष्ण के सिवाय अन्य किसी का, यहाँ तक कि बाँसुरी का भी आकर्षण नहीं है, श्रीराधा ने हरि का वेश धारण किया, और वह चन्द्र-मुखी अपने अधरोष्ठ पर बाँसुरी रखकर मधुर स्वर में गाने लगी। कुंकुमादि लेप के कारण श्रीकृष्ण की आकृति श्रीराधा की तरह बनी थी और वे आनन्द से ललितादि सखियों के साथ उसके पास पहुँचे ।। १४ ।।

कुलभुवो भुवनप्रथितार्चिषः ।
कथयतात्र कथं द्रुतमागताः ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निशि दिशि प्रदिशि भ्रमथादरात्।
अयि दरापि दरं कुरुताबलाः॥ १५॥

महारास के आरम्भ में श्रीकृष्ण ने गोपियों के समक्ष जैसा 'रजन्येषा घोररूपा' आदि भाषण किया था, श्रीकृष्णवेशधारिणी श्रीराधा भी वैसा ही बोल रही है। त्रिभुवन में जिनकी कीर्ति फैली हुई है, ऐसी महाकुलप्रसूत अंगनाएँ होकर भी आप इस वन में जल्दी कैसे आयीं और बताइये कि रात्रि में आप लोग मन में किसी के प्रति आदरभाव रखकर दस दिशाओं में क्यों घूम रही हैं। हे अबलाओ! मन में थोड़ी भी तो भीति रखो॥ १५॥

तद्यात गोष्ठं नहि तिष्ठतात्र वः।
स्त्रीणां स्वधर्मः पतिसेवनं यतः॥
किं वा भजध्वे हृदि पुष्पमार्गण-।
स्पृहामियं निष्कुट एव सेत्स्यति॥ १६॥

श्रीराधा सखियों से कहती है कि इसलिए आप लोग यहाँ नहीं रहो, गोकुल में चले जाइये, क्योंकि आप स्त्रियाँ हैं और स्त्रियों का धर्म पति-सेवा है। यदि आप 'पुष्पमार्गणस्पृहा' यानी फूल खोजने की इच्छा रखती हैं, तो यह इच्छा घर के पासवाले बगीचे में ही पूरी हो जायगी। 'पुष्पमार्गणस्पृहा' का अन्य अर्थ है-- फूल हैं मार्गण यानी बाण, जिसका जैसा काम, यदि इस इच्छा से आयी हो, तो निष्कुट यानी वृन्दावन जाओ। एक अन्य अर्थ यह भी है--कृष्ण के प्रति व्यंग्य करते हुए श्रीराधा कहती हैं कि तुम्हारी कामस्पृहा निष्कुट में, घर के बगीचे में अर्थात् दासियों के साथ ही पूरी होगी, अतः वहाँ जाओ॥ १६॥

इति तदुदितमात्रादास्य वैरस्यभाजो।
नखमणिलिखितक्ष्मा ऊचिरे साश्रु कान्ताः॥
प्रियतम रसमूर्ते मैव वक्तुं त्वमेव।
त्वदनुसृतिभृतोऽस्मानर्हसि प्रेमबन्धो॥ १७॥

महारास के समय गोपियों ने श्रीकृष्ण से कहा था--'मैवं विभोऽर्हति…' इत्यादि। उसी प्रकार कृष्णवेशधारिणी राधा का कथन सुनकर राधावेशधारी श्रीकृष्ण और ललितादि सखियाँ मुख मलिन कर, रत्न की तरह चमकने वाले नखों से जमीन पर कुछ लिखती हुई और आँखों से अश्रुधारा बहाती हुई बोलीं,-- तुम्हारी रसमय मूर्ति अत्यन्त प्रिय लगती है, तुम्हें हम लोगों से ऐसा नहीं कहना चाहिए। हे प्रेमसागररूप कृष्णरूपिणी राधे! तुम्हारा अनुसरण करने वाली हम सखियों से तुम्हें इस प्रकार नहीं कहना चाहिए॥ १७॥

मदनदहनदूनाः स्वास्तनुस्त्वन्मुखेन्दो-।
रमृतरसनिषेकैः कुर्महे शैत्यभाजः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति चिरजनितां नश्छिन्द्धि माशां स्ववेणु-।
ध्वनिभिरपि निषिच्यैवानया तीक्ष्णवाचा ॥ १८ ॥

कन्दर्परूपी (मदनरूपी) अग्नि से दुःखी होने वाली हम सखियों ने सोचा कि तुम्हारे मुखचन्द्र के अमृत रस का सिञ्चन कर हम अपने शरीर को शीतल करेंगी। इस प्रकार बहुत दिनों से पैदा हुई 'आशालता' को अपनी मुरली की मधुर ध्वनि से अमृत की तरह सींचकर इस प्रकार कठोर, तीक्ष्ण वचनों से उस आशालता को न तोड़ो ॥ १८ ॥

अथाननाब्जे स्मितमाधुरीं सा।
प्रकाश्य वैधुर्य्यमपास्य सद्यः ॥
स्ववेषभावेक्षणभाव भाजा।
कान्तेन रेमे श्रिततन्निसर्गा ॥ १९ ॥

इस पर कृष्णवेशधारी राधा ने अपने मुखकमल पर मंद स्मित हास्य की मधुरिमा प्रकट की। इसी हास्य से राधा ने राधावेषधारी श्रीकृष्ण, ललितादि का विरह-दुःख दूर किया। राधा की कृष्णवेष-रचना को देखकर जिनकी भावनाएँ जाग्रत हो उठी हैं, ऐसे श्रीकृष्णरूप कान्त के साथ उनके भावादि निसर्गों को धारण करती हुई राधा रममाण हो गयीं ॥ १९ ॥

सस्नुस्ताः कौतुकाब्धौ सरभसमसकृद् वीक्ष्य वीक्ष्यैव सख्यः।
कृष्णश्रीराधयोर्या स्मरसमरकला वाम्य चापल्यभाजोः ॥
सा अप्याश्लिष्यमाणा व्यधिषत न तनूः किं तया प्रेष्ठसख्या।
वृन्दा दूरस्थितैव स्वमतनुत जनुर्धन्यमश्रुप्लुताक्षी ॥२०॥

श्रीकृष्ण और श्रीराधा की कामक्रीड़ा रूप युद्धकला और स्त्री-पुरुष भाव की परस्पर विपरीतता देखकर वे सब सखियाँ आवेग में आ गयीं और इसे बार-बार देखती हुई आनन्दसमुद्र में स्नान करने लगीं। ललितादि ने भी उस सर्वश्रेष्ठ प्रिय सखी द्वारा अपनी तनु आलिङ्गित नहीं करायी ? अवश्य करायी। वृन्दा ने तो दूर से ही यह लीला देखकर अपना जन्म सफल बनाया, उसकी आँखों से आनन्दाश्रु बह निकले ॥ २० ॥

पश्यन्तीनां सखीनामपि निभृतमसौ कान्तमादाय तस्मा-।
दन्तर्धायैव देशात् क्वचन रहसि तं क्रीडयन्ती यदाभात् ॥
ता अप्यश्वत्थनीपप्रभृतितरुततीस्तौ विषादेन पृष्ट्वा।
दृष्ट्वा दृष्ट्वापि जातार्पितनयनयुगाः खेदमेवाभिनिन्युः ॥ २१ ॥

रास में श्रीकृष्ण जिस प्रकार अन्तर्हित (गुप्त) हो गये थे, उसी प्रकार कृष्णवेषधारिणी राधा अपने प्रियतम (राधारूप में) को लेकर सखियों के देखते-देखते उस स्थान से अदृश्य हो गयीं और किसी एकान्त स्थल पर उनसे क्रीड़ा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करातीं हुई सुशोभित हुई। सखियाँ भी पीपल, कदम्ब आदि वृक्षपङ्क्तियों से दुःख से पूछती जाती थीं। बाद में कुञ्जों में खोजते हुए एक कुञ्ज में गवाक्ष से उनके सम्भोग को देखकर आनन्द में डूब गयीं, फिर भी विपक्ष के भाव (सापत्न भाव) से दुःख से निकलने वाले वचनों का ही अनुकरण और अभिनय करने लगीं ॥ २१ ॥

वनाद्वनं यान्त्यथ मण्डयन्ती।
विचित्र माल्याभरणैः प्रियं सा ॥
न पारयेऽहं चलितुं क्वचेति।
गिरा विहायैव तमाशु लिल्ये ॥ २२ ॥

एक वन से दूसरे वन में जाती हुई, चित्र-विचित्र फूलों और आभरणों से अपने को सजाती हुई कृष्णरूपिणी राधा राधास्वरूपी कृष्ण का यह वचन सुनकर कि 'मैं चलने में समर्थ नहीं हूँ', उन्हें पीछे छोड़ झट से गुम (अदृश्य) हो गयीं ॥ २२ ॥

भुवमश्रुभिरार्द्रयन् मुहुः।
कृत हा हा स्वन एव माधवः ॥
ललितादिभिरावृतः पुनः।
विललापोच्चतरं स्वरं सृजन् ॥ २३ ॥

उस समय ललितादि सखियों से घिरे राधारूपधारी श्रीकृष्ण विरह में आसुओं से भूमि का सिंचन करते हुए और मुख से हा-हाकार करते हुए ऊँचे स्वर में विलाप करने लगे ॥ २३ ॥

दयिते ह समागमेन नो।
धिनु यत् त्वच्चरणाम्बुजं हृदि ॥
मृदुलं कठिने शनैः शनैः।
निदधे तद्नु मा तृणाङ्कुरैः ॥ २४ ॥

राधारूपधारी श्रीकृष्ण कृष्णरूपिणी राधा से कहते हैं, हे दयित! हे प्रियतमा! यहाँ हमारे साथ सम्भोग कर हम लोगों को आनन्दित करो। तुम्हारा चरणकमल अति मृदु है, पीड़ा की शंका से वह धीरे-धीरे हम लोगों के कठिन हृदय पर रखा गया है। उस पदकमल को घास के कठिन अग्रों पर चलकर कष्ट मत दो ॥ २४ ॥

साथ स्मितास्यागमदाशु विद्युत्।
पीताम्बरा नीरद नीलरोचिः ॥
स्व स्वार्चिरन्योन्य समर्पणात् किम्।
तदङ्गवस्त्रे दधतुः सुसख्यम् ॥ २५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाद में श्रीकृष्ण जिस तरह प्रकट हुए, उसी प्रकार मन्द हास्य करती हुई राधा (कृष्ण रूप में) प्रकट हुईं। उसका पीताम्बर बिजली की तरह चमक रहा था और अंगकान्ति नील मेघ की भाँति थी। श्रीकृष्ण ने अपनी अंगकान्ति राधा को दी और उसकी अंग कान्ति स्वयं ले ली। इसी तरह वस्त्रों का भी विनिमय हुआ। इससे लगता है कि श्रीराधा और श्रीकृष्ण ने अंग और वस्त्र तथा कान्ति के पारस्परिक समर्पण से आपस में सख्य किया ॥ २५ ॥

काचित्पाणिं काचन पादाम्बुजमस्याः।
तर्ह्येवैका बाहुमधादुत्पुलकेऽशे ॥
कान्तश्चिल्लीचालनभङ्गीं यदतानीत्।
तामास्वाद्यैवाजनि राधा विततक्षी ॥ २६ ॥

कृष्णरूपिणी राधा के प्रकट होने पर किसी ने उसके हाथ, किसी ने उसके चरणकमल, तो किसी ने उसके रोमाञ्चित, पुलकित बाहु स्कन्धप्रदेश में पकड़ लिये। उस समय राधारूप में होते हुए भी श्रीकृष्ण ने नेत्रकटाक्ष, भ्रुकुटीविलास आदि दिखलाये। श्रीराधा विस्मय के कारण विस्फारित नयनों से उसे देखने लगीं ॥ २६ ॥

वृन्दावादीत्तावदुपैत्याम्बुजनेत्री।
राधेऽजैषीस्त्वं निजकान्तं भ्रमयन्ती ॥
कृष्ण प्रोद्यद्दुर्गमभावो यदभूस्त्वं।
तेनाश्लिष्ठस्त्वं च महत्या जयलक्ष्म्या ॥ २७ ॥

बाद में वृन्दा कमल की तरह नेत्र वाले राधा-कृष्ण के पास आकर बोली, हे राधे ! तुमने अपने कान्त को अनेक अभिनयों से भ्रम में डालते हुए जीत लिया है। हे कृष्ण ! अति कठिन दिखने वाले राधा के भावों को पूर्ण प्रकर्ष, श्रेष्ठता के साथ तुमने अभिनय किया है। अतः बड़ी विजय रूप लक्ष्मी प्राप्त कर तुम उससे आलिङ्गित हुए हो। २७ ॥

तामर्पयित्वा मुरलीं ततः सा।
मुकुन्दपाणौ निदधे यदैव ॥
तदैव कृष्णोऽहमहो न राधे-।
त्याश्चर्यमेवाभिनिनाय रङ्गी ॥ २८ ॥

जिस समय मैंने मुरली उस कृष्ण के हस्त में अर्पण की, उस समय मैं कृष्ण हूँ, राधा नहीं। श्रीकृष्ण ने ऐसा आश्चर्यजनक अभिनय किया ॥ २८ ॥

विद्युन्मेघौ यौ मिथो वर्णभाव।
व्यत्यासेनावर्षतां हर्षधाराः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तावासीनौ स्वीकृतस्वस्वरूपौ ।
देव्याटव्या सेव्यमानौ व्यभाताम् ॥ २९ ॥

राधा-कृष्ण दोनों विद्युत् और मेघस्वरूप होते हुए भी अपना-अपना वर्ण और भाव बदलकर आनन्दविशेष की धाराएँ बरसाने लगें। बाद में अपना-अपना पूर्व रूप धारण कर जब दोनों बैठ गये, तब वनदेवी और वृन्दा ने पुष्पफलादि अर्पण कर उनकी सेवा की। उस समय वे दोनों अधिक शोभापन्न हो गये ॥ २९ ॥

अप्राणापि प्राणिनो मोहयन्ती ।
लब्धप्राणा स्यान्नवद्वारदेहा ।
मध्येयामं द्राग्वशीभूय सारम् ।
मध्ये प्रेम्णा मोहयन्ती त्रिलोकीम् ॥ ३० ॥

वंशी (मुरली) प्राणहीन होते हुए भी प्राणधारी लोगों के मन को मोहने वाली है, और जब उसे प्राण लाभ होता है यानी उसमें मुंह से प्राणवायु भरी जाती है, तब वह नौ द्वारयुक्त देह से शोभायमान होती है, प्रहर के बीच वशी-भूत होकर साररूप धारण करने वाली होती है और तीनों लोकों में मोह उत्पन्न करती है। 'मध्ये या मं' का यह भी अर्थ है—'मकारं धत्ते'—यानी जो बीच में 'म' स्वर को धारण करती है। (यह एक कूट प्रश्न प्रहेलिका रूप है, श्रीकृष्ण राधा से इसका उत्तर चाहते हैं।) ॥ ३० ॥

तामालि जानीहि मम प्रहेली- ।
मित्युच्यमाना हरिणाह राधा ॥
उत्कोचमेवाधरसी (शी धु यस्यै ।
ददासि वंशी तव कुट्टिनीयम् ॥ ३१ ॥

हे सखी राधे ! पूर्व श्लोक में कही गयी इस प्रकार की मेरी प्रहेलिका है, उसका तुम उत्तर दो। श्रीहरि के इस प्रकार कहने पर राधा कहती है कि जिसे तुम घूस (काम कराने के लिए गुप्त रूप से दिया जाने वाला धन) रूपी अधरा-मृत पिलाते हो, वही तुम्हारी कुट्टिनी यह (कुट्टनी = कुटनी = स्त्रियों को बहका कर उन्हें पर-पुरुष से मिलाने वाली स्त्री = दूती।) मुरली है ॥ ३१ ॥

गायन्ती ततमनुरागिणी यशस्ते ।
या मूर्च्छां भजति लसद्गुणावलि श्रीः ॥
ग्रामस्थाप्यतनु रसेषु या प्रवीणा ।
तां ब्रूहि प्रणयनिधे प्रहेलिकां नः ॥ ३२ ॥

अब श्रीराधा श्रीकृष्ण के लिए एक प्रहेलिका कहती है। हे प्रणयनिधे ! जो प्रेम से भरी हुई है, तुम्हारा तत यानी विस्तृत यश गाती हुई मूर्छित हो जाती है, जो श्रीसम्पन्न है, सुन्दर गुणों से युक्त है, जो ग्रामीण, देहाती होते हुए भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शृंगार रस में निपुण है, ऐसी नायिका कौन है ? इस प्रहेलिका का उत्तर दो।

[इसका उत्तर है वीणा। तत का अर्थ है वीणा तन्तुवाद्य। उनका वादन व गायन करने वाली। अनुरागिणी = अनुकूल वसंतादि रागवती। मूर्च्छा = मूर्च्छना। रसन्ती = शब्द करने वाली गुणावली, जहाँ तन्त्री समूह की शोभा है, तीन ग्राम हैं अतएव ग्रामस्था। रसों में श्रेष्ठ रस प्रकट करने वाली। प्रहेलिका—हेड्ड अनादरे। श्लाघायांच।) ॥ ३२ ॥

ईर्ष्यन्ती मम मुरलीं कलावलीभिः।
जेत्री मां सुखयति माधुरीं दधाना ॥
सा राधेत्वमिव सुवृत्तपीनतुम्बी-।
स्तन्यत्र स्फुरति रसेन वल्लकीयम् ॥ ३३ ॥

जो मेरी मुरली से ईर्ष्या करती है और स्वयं कल शब्द यानी अव्यक्त मधुर शब्द बोलने वाली है, वह अति माधुर्य से भरी हुई है और मुझे सुख देती है। हे राधे ! उसके भी सुन्दर, वर्तुलाकार और पुष्ट स्तन हैं अतः वह भी प्रेम से परिप्लुत होकर मुझे सुख देती है। (वह है वीणा, जो कलरव करके यह दिखाती है कि मैं मुरली से भी अच्छी हूँ। वह माधुरी सुख देकर मुझे जीत लेती है। उसकी तुम्बियाँ स्तन हैं, गानरस से परिपूर्ण हैं।) ॥ ३३ ॥

अथोचिरे श्रीललिता विशाखा-।
चित्रादयोऽपीहित जैत्रभावाः।
तमन्वधिन्वन् स्वसखीं पटिम्नो।
भङ्ग्यैव याः संसदि वर्णयन्त्यः ॥ ३४ ॥

श्रीकृष्ण को प्रहेलिका में जीतने के भाव से, यानी स्वयं जयशील होने की इच्छा से ललिता, विशाखा इत्यादि सखियाँ अपनी चातुर्यपूर्ण रचनाओं से सभा में अपनी सखी का वर्णन करने लगीं और उनके द्वारा श्रीकृष्ण को आनन्द देने लगीं ॥ ३४ ॥

बाला अप्यतिवृद्धा ये बन्धं मोक्षं च बिभ्रति।
शुद्धानपि तमोधाम्नो वद तान् कुटिलानपि ॥ ३५ ॥

ललिता ने विरोधाभास-पूर्ण प्रहेलिका कही—बाल होते हुए भी जो अति वृद्ध हैं, जो बन्ध और मोक्ष दोनों धारण करने वाले शुद्ध होते हुए भी तमोरूप मलिन, कुटिल हैं, कहो ऐसे कौन हैं ?।

बाल का अर्थ है केश, जो अतिवृद्ध, अतिशय लम्बे हैं; बन्ध को जो धारण करते हैं, यानी संस्कार के समय बाँधे जाते हैं, किन्तु क्रीड़ा के समय श्रीकृष्ण उन्हें छोड़ देते हैं, धूलिकण आदि मल न होने के कारण जो शुद्ध यानी स्वच्छ हैं; फिर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी जो तमोरूप यानी कृष्णवर्ण, काले रंग के हैं, जो कुटिल, वक्र जैसे होने वाले हैं, ऐसे राधा के केश हैं ॥ ३५ ॥

प्रतिकर्म निबद्धानामपि कृष्णोऽस्मि मोक्षदः।
येषां रत्युद्गमे केशान् विभक्तांस्तानिमान् भजे ॥ ३६ ॥

श्रीकृष्ण ने कहा—मैं उन विशेष भक्तों का सेवक हूँ, जो मद्विषयक रति के कारण प्रत्येक कर्म में मुझ पर प्रेम रखते हैं। वे कर्म में निबद्ध रहते हैं, फिर भी मैं उन्हें मोक्ष देता हूँ, संसार से उनका उद्धार करता हूँ। वे भक्त कैसे हैं? केशान् अर्थात् क माने सुख, उस पर स्वामित्व सम्पादन करते हैं।

प्रहेलिका का उत्तर भी देते हैं—परस्पर विभक्त, यानी अलग-अलग हुए केशों का मैं सेवन करता हूँ जो केश संस्कार के समय (सजाते समय) बाँधे जाते हैं, और रतिक्रीड़ा के आरम्भ में मैं उन्हें मोक्ष देता हूँ अर्थात् छोड़ देता हूँ; वे मलरहित यानी शुद्ध हैं, फिर भी तमोरूप मलिन अर्थात् काले हैं ॥ ३६ ॥

धृत्वा विभूतिं भ्रमतीह सर्वथा।
ध्वन्यर्थतत्त्वप्रथनेऽति पण्डिता ॥
या/योगिनी संभृतविश्वभावदृग्
धन्योऽसि तां चेत् प्रिय बोद्धुमीशिषे ॥ ३७ ॥

अब विशाखा प्रहेलिका कहती है। जो योगिनी विभूति यानी भस्म धारण कर मार्ग में सब प्रकार से घूमती है, जो अर्थों के पदार्थों (सांख्योक्त पच्चीस पदार्थों) के विस्तार यानी विवेचन में पण्डित है और जो सभी प्राणियों के अंतःकरण के भावों को जानती है; हे प्रिय! यदि तुम उसे जान सकते हो, तो तुम धन्य हो।

अन्य दृष्टि से अर्थ इस प्रकार है—यह वर्णन राधा की दृष्टि का है। जो विभूति (कज्जल) धारण कर चञ्चलता के कारण सर्वदा घूमती रहती है, जो ध्वन्यर्थ के तत्व को जानने में पण्डित है, सब भावों को जो प्रकट कर सकती है, जो ध्वन्यर्थ यानी आँखों से सूचित पदार्थों की अभिव्यक्ति में निष्णात है, जो योगिनी है यानी कृष्ण के अंगों से जिस दृष्टि का सम्बन्ध है और जिसमें सभी भाव, औत्सुक्य आदि संभृत हैं यानी भरे हुए हैं, ऐसी राधा की दृष्टि है ॥ ३७ ॥

अनङ्ग सौख्यसिद्धये यदुज्ज्वलात्मवेदनम्।
कृपार्द्रया यया मुहुस्तदेव पाठितोऽभवम् ॥
विरज्य सर्वकर्मतो यदाज्ञया वनं गतो।
लभेय निर्वृतिं गुरुं प्रियादृशं स्तवीमि ताम् ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—अनङ्ग सौख्य यानी देहातीत होने के सौख्य अर्थात् मुक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की सिद्धि के लिए शुद्ध जीवात्मा का ज्ञान जिससे होता है, वह आत्मज्ञान जिस योगिनी ने मुझे बार-बार पढ़ाया और जिसकी आज्ञा से मैं सर्व कर्मों से विरक्त होकर वन में तथा जिससे मुझे शान्ति मिलेगी, ऐसी जो मेरी गुरु रूप योगिनी है, उसकी मैं स्तुति करता हूँ। उसका सार्वत्रिक ज्ञान मुझे प्रिय है।

दृष्टि पक्ष से अर्थ है—अनङ्ग यानी मदनसौख्य के लिए उज्ज्वल रसस्वरूप जो शृङ्गार है, उसका ज्ञान जिस दृष्टि ने मुझे सिखाया और जिस दृष्टि के इंगित से मैं सभी काम छोड़ कर वन में गया, जहाँ मैंने शान्ति प्राप्त की और करूँगा, राधिका की उस दृष्टि की मैं स्तुति करता हूँ ॥ ३८ ॥

सदापवर्गसाधनो नितान्तदान्तनिग्रहः।
शुचिप्रियो रुचिप्रियोऽनुरागिता धुराधरः॥
य एव भाति सौभगैस्तमत्र वर्णयन्नपि।
स्वया रसज्ञयैव तां नयाच्युताशु धन्यताम्॥ ३९ ॥

चित्रा प्रहेलिका कहती है—जो सर्वदा अपवर्ग यानी मोक्ष का साधन करता है, जिसने पूर्ण रूप से अन्तर्बाह्येन्द्रिय-निग्रह किया है, जिसे अतिपवित्र वस्तु प्रिय है, जो सबके प्रति अनुराग, प्रेमभाव रखता है, ऐसे सौभाग्य से सुशोभित योगी का अपनी जिह्वा से वर्णन कर अपनी जिह्वा को धन्य बनाओ।

अधरोष्ठ की दृष्टि से—जो सर्वदा प-वर्ग के साधन यानी प-वर्ग के उच्चारण का स्थल है, जिसके साथ नितान्त यानी अतिशय रूप से श्रीकृष्ण के दाँतों का विग्रह यानी युद्ध होता है, ऐसा दाँत विग्रहशील शुचि यानी शृङ्गार रस जिसे अति प्रिय है, ऐसी ही अनुरागिता यानी लालवर्णवत्ता का अतिशय जिसमें है, ऐसे अधरोष्ठ का जिह्वा से वर्णन यानी आलिङ्गन कर अपनी जिह्वा को धन्य बनाओ ॥ ३९ ॥

किं वर्णयित्वैव विरम्यतामहो।
रसज्ञयाप्यस्य विनोपगूहनम्॥
तदालयो योजयतामुमुत्सुकम्।
प्रियाधरं संततमुत्कयानया ॥ ४० ॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—क्या उसका सिर्फ वर्णन करके ही रुक जायं और जीभ से आलिङ्गन न दें, ऐसा हो नहीं सकता। इसलिए हे सखियो! मेरी जिह्वा के साथ संयोग करने के लिए अति उत्सुक राधा के अधर को सदा मिलने हेतु उत्सुक मेरी जिह्वा से आप लोग मिलाइये ॥ ४० ॥

तनुतातनुलम्पटतां कुटिलाः।
स्वचिटस्फुट कीर्तित कीर्तिभराः॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इति भीषणभङ्गुरचिल्लिकटु।
क्रकचैः स्वसखीः समतर्जदियम् ॥ ४१ ॥

श्रीराधा सखियों के प्रेम और क्रोध से कहती है,—हे कुटिल स्वभाववाली सखियो! आप इस लम्पट आदमी से सम्भोग विषयक लम्पटता की बातें विस्तार से करिये, मैं तो यहाँ से चली जाती हूँ, क्योंकि आप इस अपने जार, कामुक से सहयोग करने के लिए अति प्रसिद्ध हैं। ऐसा कहकर श्रीराधा मानो तीक्ष्ण आरे के समान अपनी भीषण भ्रुकुटिभङ्गि से अपनी सखियों को डराने लगीं ॥ ४१ ॥

न रुषा परुषा भव साध्वि भृशम्।
रचयाम्यथ निर्वचनां भवतीम्।
स्वकलामभिरक्ष्य विलक्षणधीः।
प्रतिवक्ष्यसि चेदयि जेष्यसि माम् ॥ ४२ ॥

क्रोधवश जाने वाली राधा को रोकते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं,—हे साध्वी! रोष से रूठकर तुम कठोर मत बनो। मैं प्रहेलिका से तुम्हारा ही वर्णन करता हूँ (निर्वचनां = निरुत्तरां त्वां विदधामि इत्यपि भावः)। इस पर यदि तुम अपनी पाण्डित्य कला के अनुसार उत्तर देने लगोगी तो मुझे जीत लोगी, क्योंकि तुम विलक्षण बुद्धिशालिनी हो ॥ ४२ ॥

एकेन शोभामपि योऽभिधत्ते।
द्वाभ्यां दिविष्ठां स्त्रिभिरेव वर्णैः ॥
तवाप्यभीष्टं द्युनगं चतुर्भिः।
श्रोत्राभिरम्यं सखि पञ्चभिर्वः ॥ ४३ ॥

इस बार श्रीकृष्ण ने ऐसी प्रहेलिका कही, जिसका अर्थ श्रीराधा समझ तो सके, किन्तु लज्जावश बोल न सके।

इस शब्द का प्रथम वर्ण शोभावाचक है, पहले दो वर्ण लेने पर देववाचक शब्द बनता है, प्रथम तीन वर्णों से तुम्हारी अति प्रिय वस्तु का वाचक शब्द बनता है, प्रथम चार वर्णों से कल्पवृक्ष वाचक शब्द बनता है और पाँचों वर्णों से कर्ण से आस्वादनीय वस्तु का वाचक शब्द बनता है। प्रथम शोभावाचक शब्द है 'सु', दो अक्षरों से देववाचक शब्द 'सुर', तीन अक्षरों से स्त्रियों की अतिप्रिय वस्तु का वाचक शब्द 'सुरत', चार अक्षरों से कल्पतरु वाचक शब्द 'सुरतरु' और पाँचों वर्णों से ऐसा शब्द बनता है जिसे स्त्रियाँ कर्ण से सुनना चाहती हैं—'सुरतरुत'। सुरतक्रीड़ाकालीन ध्वनि का नाम 'सुरतरुत' है ॥ ४३ ॥

तमाचक्ष्व शब्दं त्वमित्युच्यमाना।
प्रियेण प्रिया नम्रवक्त्रारविन्दा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनीशापि रोद्धुं स्मितं भङ्गुरभ्रूः ।
अमुं सूक्ष्मधीर्व्याजतो व्याजहार ॥ ४४ ॥

श्रीकृष्ण ने कहा,—हे राधे ! ऐसा शब्द तुम कहो । श्रीकृष्ण का प्रश्न सुनकर श्रीराधा ने, जिसका मुखकमल लज्जा से नम्र हो गया है, हँसी रोकने में असमर्थ होते हुए भी प्रणय-कोप से भ्रुकुटी टेढी कर छल से उत्तर दिया ॥ ४४ ॥

वदैकेन चारूत्तरेणैव तावत् ।
क्रमाल्लब्धवर्णेन मत् प्रश्नवीथीम् ॥
त्वमादौ ततः स्वेहितं शब्दमेतम् ।
प्रियां वाचयन् याहि पद्मां सखीम् ॥ ४५ ॥

श्रीराधा श्रीकृष्ण से कहती हैं—हे लब्धवर्ण, विद्वच्छ्रेष्ठ ! पहले मेरे प्रश्न-समूह का एक पङ्क्ति का उत्तर तुम दो और बाद में तुम्हारे प्रश्न का जिस शब्द रूप तुम उत्तर चाहते हो, उसे सुनने के लिए तुम तुम्हारी प्रिय सखी पद्मा (चन्द्रावली) के पास जाओ और उससे तुम्हारा अभीष्ट उत्तर बुलवाओ । दूसरा अर्थ है—क्रम से पूर्व-पूर्व वर्ण के साथ अन्तिम वर्ण जोडकर मेरी प्रश्नावली का उत्तर दो । (उदाहरणार्थ—शब्द है सुरतरुत; सु के साथ त जोड़कर सुत; र के साथ त जोड़ कर रत, त के साथ त जोड़ कर तत आदि) ॥ ४५ ॥

गृही किमिच्छेत्तरुणेहितं किम् ।
किं चारु वाद्यं किमु कर्णवेद्यम् ॥
सख्यः किमाकर्णयितुं निलीना- ।
स्तिष्ठन्ति तत्त्वं वद निर्विवादम् ॥ ४६ ॥

राधा के प्रश्न इस प्रकार हैं—

(१) गृहस्थ किसी इच्छा करते हैं ? पहले सु के साथ अन्त्य त मिलाना—सु त रु त ।

(२) तरुण क्या चाहते हैं ? द्वितीय अक्षर र के साथ अन्त्य त—सु र त रु त ।

(३) सुन्दर वाद्य कौन-सा है ? तृतीय अक्षर त के साथ अन्त्य त मिलाना—सु र त रु त । (वीणादि तत वाद्य) ।

(४) कानों से सुनने लायक क्या है ? चतुर्थ अक्षर रु के साथ अन्त्य त मिलाना—सु र त रु त । (रुत = सम्भोगकालीन शब्द)

(५) सखियाँ क्या सुनने के लिए छिप कर रहती हैं ? सुरतक्रीड़ाकालीन शब्द—सुरतरुत (रतिकूजितम्) ॥ ४६ ॥

सुरतरुपूर्वं तमिति मुकुन्दे ।
वदति तदतिपटिमामृत विन्दे ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सपदि सखीभिरथैधितमाना।
युवतिमणिर्मुमुदे स्मयमाना ॥ ४७ ॥

श्रीराधा के प्रश्न का उत्तर श्रीकृष्ण ने 'सुरतरु पूर्वक त' कह कर दिया और जब वे श्रीराधा के अतिकौशल्यपूर्ण बुद्धिरूप अमृतरस का आस्वादन करने लगे, तब सखियों ने श्रीराधा का भारी सम्मान किया। उस समय सब तरुण स्त्रियों में श्रेष्ठ श्रीराधा ने आश्चर्य और गर्वमिश्रित आनन्द का अनुभव किया ॥ ४७ ॥

शब्दमहो तमवाचयदत्रै-।
वाश्विममेव भवत्यपि चित्रैः॥
प्रश्नवरैर्मिषतदजेया।
कृष्णधियाप्यसि वाढममेया ॥ ४८ ॥

वृन्दा कहती है—अरे! बड़े आश्चर्य की बात है कि श्रीकृष्ण जो शब्द श्रीराधा के मुंह से निकलवाना चाहते हैं, उसी शब्द को श्रीराधा अनेक सुन्दर-सुन्दर प्रश्नों के निमित्त कपट कर श्रीकृष्ण के मुख से ही निकलवा लेती है। अतः श्रीकृष्ण बुद्धि, बल आदि कई प्रकारों से श्रीराधा को जीत नहीं सकते, श्रीराधा अजेय हैं। श्रीकृष्ण अपनी बुद्धि से भी श्रीराधा को जान नहीं पाते ॥ ४८ ॥

इत्येवमुक्त्वा बहुमाल्य गन्ध-
ताम्बूल दिव्याभरणेन वृन्दा।
निषेव्य कृष्णं धृतरास तृष्णं।
विज्ञाय विज्ञा प्रणुनाव किञ्चित् ॥ ४९ ॥

ऐसा कहकर वृन्दा ने मालाओं, धूपगन्ध, ताम्बूल तथा दिव्य आभरणों से श्रीकृष्ण की सेवा की और यह सेवा जानकर कि श्रीकृष्ण के मन रासक्रीड़ा की इच्छा है, ऐसा प्रस्ताव रखा ॥ ४९ ॥

रसिक सिकतातूलावल्या तथातुलशिल्पिभिः।
व्यरचि रुचिरं चित्रं मित्रात्मजा पुलिनेऽनिलैः॥
तनुतरतरङ्गाल्यस्तुल्या जलस्थलयोर्यथा।
स्युरसितसिते कान्ती भ्रान्तीर्जनस्य तदस्यतः ॥ ५० ॥

हे रसिक! सफेद बालू ही कपास-रेखाएं हैं। वायुरूपी अपूर्व शिल्पकारों ने उनकी पंक्तियों से सूर्यकन्या यमुना के वालुकामय प्रदेश पर सुन्दर चित्र-रचना की है। छोटे-बड़े आकार की तरङ्गें बालुका पर भी जलपूरित स्थल जैसे निर्मित कर रही है, जिससे जल और स्थल समान आकार के दिखायी देते हैं। लेकिन स्थल में होने वाली जलभ्रान्ति सफेद रंग की कान्ति देखकर दूर हो जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यमुना का जल नील वर्ण है और सिकता सफेद है। यह वर्णभेद भ्रान्ति को दूर करता है ॥ ५० ॥

किमिति वितता कार्पूरीयं सरिन्निजमध्यतो।
मृगमदरसामन्यां काञ्चिद् द्रुतीं दधतीक्ष्यते ॥
किममितयशः सौर्य्यास्तौर्यत्रिकैः स्वगतैरिदम्।
त्रिजगदपि संस्ताव्यैवेमां समाश्लिषदादरात् ॥ ५१ ॥

यमुना की दोनों ओर दक्षिणोत्तर तीरों पर सफेद बालुकामय प्रदेश देखकर कल्पना करते हैं। दोनों ओर कापूर (कर्पूर) की ही मानो यह नदी है, पर अपने मध्य में कस्तूरीमय (कस्तूरी रस की) नदी क्यों धारण किये बैठी है। दोनों ओर सफेद और बीच में नीलवर्ण यमुना-प्रवाह को कस्तूरी रसमय नदी कहकर उत्प्रेक्षा करते हैं। लोग ऐसी नदी को देख रहे हैं; अथवा तीनों लोकों ने तौर्यत्रिक यानी गीत, वाद्य एवं नृत्य से सूर्यकन्या यमुना का अपरिमित यश गाया। (ये तीनों साधनागीत, वाद्य एवं नृत्य—तीर पर दिखायी दे रहे हैं।) यही यश यमुना नदी की सफेद बालुका के रूप में आदर से आलिङ्गन किये हुए हैं ॥ ५१ ॥

एह्येहि कान्ते विलसाम हन्ते-।
त्युपात्ततत्पाणिदलः कलावान् ॥
आगत्य मध्ये पुलिनं वितेने।
हल्लीशकोल्लासमुदारलीलः ॥ ५२ ॥

वृन्दा के वर्णन से श्रीकृष्ण को रासक्रीड़ा का स्मरण हो आया। उन्होंने श्रीराधा का कोमल हाथ अपने हाथ में पकड़ कर कहा, हे कान्ते! आओ हम यहाँ क्रीड़ादि विलास करें। इतना कहकर वे बालुकामय तीरप्रान्त पर हल्लीशक का उपक्रम करने लगे। (नारीणां मण्डलीनृत्यं बुधा हल्लीशकं विदुः) ॥ ५२ ॥

कलयत कलधौतनीर धौतं।
व्यधित क एतद हो महोज्ज्वलं नः ॥
स्थलमलसदृशो भृशोत्सुकानाम्।
इह बहुरासविलास साधुसिध्यै ॥ ५३ ॥

हे मन्थर-मन्द जैसी दृष्टिवाली गोपियाँ! क्रीड़ा-विलास के लिए उत्सुक हम लोगों का रास-विलास अच्छी तरह सम्पन्न हो, इस दृष्टि से यह पुलिन स्थल (बालुकामय प्रदेश) जल से धोकर अति सुन्दर, स्वच्छ, चमकदार और उज्ज्वल बनाया गया है; ऐसा किसने किया है? ॥ ५३ ॥

मधुरिम सरसं विधाय शुक्लं।
गुणमखिलं विधिरेव वस्त्रपूतं ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुलिनमिदमथाशु तेन सिक्त्वा ।
जगति कलां प्रथयांचकार किं स्वाम् ॥ ५४ ॥

मानो ब्रह्मदेव ने सम्पूर्ण जगत् का शुक्लवर्ण सफेद रंग के माधुर्य से भरे पानी में स्नान कर, मिश्रित कर, बाद में उसे वस्त्र से छानकर उस धवलवर्ण से यहाँ यमुना के पुलिन प्रदेश को सींचा हैं । ऐसा लगता है मानो उससे ब्रह्मदेव ने सौन्दर्य-निर्मिति की अपनी कला का प्रदर्शन किया है ॥ ५४ ॥

सान्द्रस्तुतच्छानितशिष्टभागः ।
साक्षेपनिक्षेपवशादितः किम् ॥
खेऽभूत् शशाङ्कः कणिका समूहो ।
नक्षत्रलक्षत्वमवाप राधे ॥ ५५ ॥

पूर्व श्लोक में जिस धवल रस का वर्णन है, उसके छानने पर वस्त्र में जो 'गाल' (वस्त्र में बचा अंश) बचा है, उसे इस पुलिन पर न फेंकने को कहा गया हैं, क्योंकि इससे पुलिन मलिन हो जायगा । उसे आकाश में ही फेंकने को कहा गया है । फेंका हुआ वह अंश आकाश में चन्द्र बना, उसके अन्दर का जो मलिन भाग था वह कलङ्क बना और फेंकते समय जो विन्दुरूप कणिका समूह इधर-उधर फैल गये, वे लाखों नक्षत्र बन गये ॥ ५५ ॥

इतिवर्णयन्तमनुरागिणी गणाः ।
समया विधाय निजकान्तमग्रतः ॥
इतरेतरात्तभुजवल्लिमण्डली-
रचनातिशोभमवतस्थिरे क्षणम् ॥ ५६ ॥

इस प्रकार वर्णन करने वाले अपने प्रिय कान्त को अपने बीच में लेकर अनुरागिणी सखियाँ परस्पर हाथ पकड़ कर अतिशोभायमान मण्डलाकार होकर कुछ क्षण तक खड़ी रहीं ॥ ५६ ॥

—कलापकम्—

किमनङ्गकीर्तिरसपूरिते सर- ।
स्युदितं महद्विकचमेतदद्भुतम् ॥
कनकाम्बुजं मधुरनीलकर्णिकम् ।
विबुधाङ्गनाक्षिमधुपावलि स्तुतम् ॥ ५७ ॥

यमुना का पुलिन प्रदेश मानो मदन के कीर्तिरूप जल से भरा हुआ सरोवर ही है । वहाँ मण्डलाकार खड़ी गोपिकाएँ मानो उसमें उत्पन्न स्वर्णकमल हैं और श्रीकृष्ण उस कमल की नीलरत्नमय कर्णिका हैं । इस मधुर कर्णिका पर घूमती हुई देवाङ्गनाओं के नेत्ररूपी भ्रमर की पंक्तियाँ उस कमल की स्तुति कर रही हैं, मानो उसका रस-सेवन कर रही हैं ॥ ५७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किम्वा धरण्यैव धृतं निजालिके।
महोत्सवे चन्दन चन्द्र चर्चिते ॥
कस्तूरिका चारुतमालपत्रकं।
काश्मीर चित्रावलिवेष्टितं बभौ ॥ ५८ ॥

अथवा पुलिन प्रदेश पृथिवी का मानो ललाटप्रदेश है। वह धवलवर्ण है, क्योंकि कर्पूरमिश्रित चन्दन-लेप उस पर लगा हुआ है। पृथिवी ने किसी उत्सव में श्रीकृष्ण यानी कस्तूरी तिलक ही धारण किया है और गोपी-मण्डली उस तिलक की चारों ओर केशर के रंग के बनाये हुए चित्र हैं, अर्थात् पृथिवीरूप स्त्री ने कर्पूर चन्दनचर्चित ललाट पर कस्तूरी तिलक और उसके आसपास केशर से चित्र बनाये हैं। (पुलिन = भाल, सफेद वर्ण = चन्दनकपूरलेप, श्रीकृष्ण = कस्तूरीतिलक, गोपियाँ = सुवर्ण चित्र) ॥ ५८ ॥

कानक्योऽमू रम्भाः शम्भाः।
कर्पूरेऽस्मिन् नव्ये भव्ये ॥
वप्रे सप्रेमैवावव्रुः।
किं तापिच्छं पिच्छोत्तं सम् ॥ ५९ ॥

अब पुलिन पर कपूर का खेत है, ऐसी उत्प्रेक्षा करते हैं। इस विशाल पुलिन रूपी खेत में ये गोपियाँ मानो सुवर्ण कदलियाँ हैं। वे मंगलमय हैं। उन्होंने मानो प्रेमपूर्वक अपने बीच श्रीकृष्ण रूपी तमाल वृक्ष ही धारण किया है, ऐसा लगता है ॥ ५९ ॥

शारद्या किं सौरज्वाला-
वल्याश्लिष्टं त्यक्त्वाकाशम्।
हैमे देशे स्निग्धाम्मोदो।
विद्युन्मालामध्ये रेजे ॥ ६० ॥

अब पुलिन प्रदेश हिमकलामय है, इसलिए शरद् ऋतु सूर्य ज्वालाओं से सन्तप्त आकाश को छोड़कर, पुलिनरूपी हिममय प्रदेश में गोपीमण्डल रूपी विद्युन्माला के बीच स्निग्ध श्यामल मेघरूप श्रीकृष्ण बनकर शोभायमान हो रही है ॥ ६० ॥

षड्जस्वरेणाथ चतुः श्रुतिस्पृशा-।
रोहावरोहौ गमकैर्विभूषयन् ॥
केदाररागं रसिकेन्द्रशेखर।
तेनेत्ति तेनेति यदा ललाप सः ॥ ६१ ॥

रसिकों के राजा श्रीकृष्ण चतुःश्रुतिक षड्ज स्वर के स्पर्श से आरोह-अवरोह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और गमकों का प्रदर्शन कर तेन-तेन मंगलवाचक अनुकरण शब्दों के साथ केदार राग का आलाप कर रहे हैं ॥ ६१ ॥

तदमितमाधुरी सुरसतीः सपतीरपि खे ।
व्यधित विमानगा विवशयन्त्यतनुज्वरिताः ॥
अभजत दर्पकः सललनोऽपितदीयमहा ।
मदनशरप्रहारविधुरो बहुमोहमहो ॥ ६२ ॥

लीला देखने के लिए देव अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ विमानों से आये थे। श्रीकृष्ण की अपरिमित माधुरी देखकर पति के साथ विमान में होते हुए भी देवस्त्रियाँ उस माधुरी के मदन ज्वर से विवश हो गयीं। मदन अपनी स्त्री रति के साथ आया था, श्रीकृष्ण की माधुरी ने अप्राकृत महामदन होने के कारण उसे भी शर-प्रहार से दुःखी बनाया, वह भी महामोह में पड़ गया ॥ ६२ ॥

अथ ललितादिकण्ठमिलनात् किलगानधुराम् ।
नटनमपि प्रतिप्रियतमाद्वय मध्यगतः ॥
विनिहित तत्तदंसभुज एव जवेन यदा– ।
रभत विधातुमद्भुत विलासकलाजलधिः ॥ ६३ ॥

इसके अनन्तर प्रत्येक प्रियतमाद्वय के बीच एक-एक कृष्ण थे, उन्होंने ललितादि सखियों के स्कन्धों पर अपनी भुजाएँ रख दी थीं। ललितादि वनिताओं के कण्ठ से मधुर स्वर मिलने पर जब अनेक विलास कलाओं के सागर श्रीकृष्ण ने नृत्य के साथ अद्वितीय गायन आरम्भ किया ······॥ ६३ ॥

वादित्ररागस्वरमूर्च्छनाश्रुति– ।
ग्रामक्रिया हस्तक ताल देवताः ॥
स्वस्वक्रियाश्चक्रुरदित्य सम्भ्रमात् ।
मूर्ताः प्रतीता इव तर्हि संहताः ॥ ६४ ॥

उस समय वाद्य, राग, स्वर, मूर्च्छना, श्रुति, ग्राम, क्रिया, हस्तक, ताल आदि की अधिष्ठात्री देवियाँ स्वयं प्रकट होकर अदृश्य रूप में आवेग से एकत्र मिलकर अपनी-अपनी क्रियाएँ करने लगीं ॥ ६४ ॥

कच्छपिकाभिस्तत्र मृदङ्गे- ।
ष्वनुपदमुदयति नवनवनिनदे ।
नृत्यगतीः क्वाप्यश्रुतदृष्टा ।
विदधति सह युवतिभिरघमथने ॥ ६५ ॥

कच्छपी वीणा के साथ-साथ मृदङ्ग से भी प्रतिक्षण नवीन-नवीन शब्द प्रकट हो रहे थे। पाप-क्षालन करनेवाले श्रीकृष्ण युवतियों के साथ अदृष्ट श्रुतपूर्व (जो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

 CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहले कभी न देखा गया और न सुना गया) नर्तन की गतियाँ प्रदर्शित कर रहे थे। उस समय… ॥ ६५ ॥

थै तथ थैया ता तथ थैया।
दृमिकि दृमिकि तृकि, तृकि, तृकि, तृकि था ॥
इत्थमुदीयुस्तालतरङ्गा।
मधुर वदन सरसिज कुलकलिताः ॥ ६५–अ।

थै तथ थैया ता तथ थैया दृमिकि दृमिकि तृकि तृकि तृकि तृकि था—ताल-बोधक वाद्यों के पाटाक्षर मधुर वदन कमल से उत्पन्न होने लगे ॥ ६५–अ ॥

कङ्कणकिङ्किण्याद्यलिवाद्यैः।
झणदिति झणदिति मधुरिम लहरीम् ॥
काञ्चन भेजुः काञ्चनवल्यः।
किमुदित शुचिरसमृदुल सुमनसः ॥ ६६ ॥

गोपियों को पङ्क्तिरूप काञ्चनवल्लियों के ऊपर कङ्कणकिङ्किणीरूप भ्रमर हो वाद्य हैं। उन भ्रमरों से उत्पन्न होनेवाले झणत् झणत् आदि शब्दरूप मधुरिमा से भरी लह-रियों का अनुभव कराने लगे। उस समय जो शृङ्गार रस उत्पन्न हुआ, उसमें मृदुता अधिक थी मानो उनके मन ही लताओं के फूल हैं। यहाँ यह उत्प्रेक्षा है कि गोपियों का मण्डल सुवर्णवल्ली है, उनके कङ्कण-किङ्किणी आदि मानो भ्रमरों की झंकार हैं और मन फूल हैं ॥ ६६ ॥

किं सुषमाब्धेरेत्य विरेजुः।
स्मरकृत मथन रभसभरजनिताः ॥
लक्ष्म्य इमाः स्वां कीर्तिमचैषुः।
विधिजगदविदितनटन पटिमभिः ॥ ६७ ॥

शोभा रूपी सागर का मदन ने वेग से मन्थन किया, जिससे गोपी रूप लक्ष्मियाँ यहाँ आकर विराजमान हुईं। उन्होंने ब्रह्मा-निर्मित जगत् में लोगों के समक्ष; जो नर्तन-चातुर्य नहीं जानते थे, उस चातुरी को प्रकट कर कीर्ति अर्जित की ॥ ६७ ॥

न विद्युदभ्रैः कनकेन्द्ररत्नैः।
न वा न वा चम्पकनीलपङ्कजैः ॥
रसैस्तु काश्मीरमदाञ्चितैः सा।
माले व रेजे स्मरजप्यमाला ॥ ६८ ॥

दो गोपियों के बीच श्रीकृष्ण के रहने से गोपियों की जो माला बनी, वह बिजलीयुक्त मेघों, सुवर्ण इन्द्रनील मणियों अथवा चम्पक व नीलकमलों से बनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

माला नहीं है, बल्कि कश्मीर की केशर एवं कस्तूरी से रंगी और शृङ्गार रस से बनी कन्दर्प माला है। वह इस प्रकार शोभायमान है कि जैसे मदन के जप करने की माला है ॥ ६८ ॥

हस्तकशस्तपदार्थविभेद।
ख्यापनतालगतिक्रमनाट्यात् ॥
ये परिरम्भ कुचग्रह चुम्बा-।
स्ते न पृथक् तत (ततः पृथक्) आसत रासात् ॥ ६९ ॥

इसमें ऐसा वर्णन है कि रास के समय जो आलिङ्गन, कुचग्रहण, चुम्बन आदि लीलाएँ हैं, वे रासकर्म से अलग नहीं हैं। रास में हस्तमुद्राओं से जो प्रशस्त पदार्थ चन्द्र, कमल आदि दिखाये जाते हैं, और तालगति के अनुसार नाट्य का जो क्रम दिखाया जाता हैं, वे सब यथार्थ रूप से आलिङ्गन, कुचग्रहण, चुम्बन आदि में सिद्ध होते हैं, उसी में रासरूप प्रकट होता है ॥ ६९ ॥

त्वद्वदनं सदनं नवलिम्नाम्।
तत्र च हन्त दृगन्त विलासाः ॥
तेष्वसमां सुषमामुपजग्मुः।
सुन्दरि कामकलाः सकला स्ताः ॥ ७० ॥

श्रीकृष्ण कहते हैं,–हे सुन्दरी! तुम्हारा मुख सौन्दर्य का खजाना है, तुम्हारा वदन नव-नव शोभा प्रदर्शित करने वाला है। उस वदन पर नेत्रकटाक्षों के विलास है। उन विलासों में कामकलाओं का सम्पूर्ण दर्शन होता है। तुम्हारे नेत्रकटाक्ष का आधार मिलने से उन कामकलाओं को अतुलनीय शोभा प्राप्त हुई है ॥ ७० ॥

कान्ते त्वदास्योदयदत्तमिन्दु-।
मृगच्छलाद्दुर्यश एव धत्ते ॥
जनोपहासासहनोऽथ वा किं।
द्विजोऽपि मूढो गरलं जघास ॥ ७१ ॥

हे सुन्दरी! तुम्हारे मुख के उदय से चन्द्र की शोभा भी उसके सामने तुच्छ हो जाती है। यह चन्द्र को अपकीर्ति हैं, जिसे छिपाने के लिए वह कहता है कि मैंने मृग को धारण किया है अथवा स्वयं द्विजराज होते हुए भी इस अपकीर्ति से अप्रसन्न, विषण्ण होकर कहता है कि मैंने मरने की इच्छा से विष खाया है, इसीलिए यह काला दाग है। किन्तु यह मूढ है, क्योंकि वह इतना भी नहीं जानता कि मैं अमृतमय हूँ ॥ ७१ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत्यद्यदमनोऽगायत् कान्तां तां सरिगमपैः ।
साप्यतिचतुरा गीतैस्तैस्तैस्तं किमु न जगौ ॥
तत्र तु यदभूत् संबुध्यन्तं तत्पदमनया-
गीयत रभसादन्तन्यस्ताद्यस्वर सुरसम् ॥ ७२ ॥

भगवान श्रीकृष्ण ने षड्जादि स्वरों के सहयोग से कान्ता का यानी श्रीराधा का गान किया । अति चतुर होने के कारण श्रीराधा भी श्रीकृष्ण के गाये हुए पदों से ही उन शब्दों को बोलकर गाती थीं । जहाँ श्रीकृष्ण ने संबुध्यन्त जैसे कान्ते, सुन्दरी आदि का प्रयोग किया, श्रीराधा उसे अकारान्त कर, जैसे श्रीकृष्ण को हे कान्त ! हे सुन्दर ! यानी लिंग परिवर्तन कर गाती थीं । इस प्रकार श्रीराधा ने प्रेमभक्ति के आवेग में उन्हीं पदों से श्रीकृष्ण का गान किया । (पक्षान्तर से ऐसा अर्थ है—'सम्यक् बुद्धेरन्तः अवधिर्यत्र तत् पदम्' । आद्यस्वर षड्ज से वह उसे अच्छी तरह गाती थीं ।) ॥ ७२ ॥

मण्डलरचनां तासामस्यन्नाहस कुतुकी ।
नृत्यत महिला एकैकश्येनाद्भुतमधुना ॥
ओमितिललिता तास्वादौ सा व्यञ्जितपटिमा ।
धिद्धी, द्राँ द्राँ द्राँ कुटु, तृकि, थेत्युद्भटमनटत् ॥ ७३ ॥

श्रीकृष्ण गोपियों की मण्डलाकार श्रेणी तोड़कर कहने लगे, हे सुन्दर स्त्रियो ! अब एक-एक करके अलग-अलग गान करिये । यह सुनकर ललिता ने कहा, ठीक है । इसके बाद वह अपनी चातुरी प्रकट करती हुई धिद्धो आदि तालबोधक शब्दों का अनुकरण कर गाने लगी और नाचने लगी । वह नर्तन उद्भट यानी सर्वोत्तम, अतिसुन्दर प्रतीत होने लगा ॥ ७३ ॥

इत्थं विशाखादि सखीततेः क्रमात् ।
पृथक् पृथक् नाट्यकला विदग्धताम् ॥
आस्वादयन् मूर्द्धविधूननैर्मुहुः ।
कान्तः सकान्तः सफलीचकार ताम् ॥ ७४ ॥

इस प्रकार क्रम से विशाखादि सखियों की नाट्यकला का चातुर्य श्रीकृष्ण ने देखा । कान्ता राधा के साथ उसका आस्वाद लेते हुए, मस्तकादि हिलाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए श्रीकृष्ण ने इस नर्तन-कौशल्य को सफल बनाया ॥७४॥

ताः सभ्यत्वंदधुरथ निखिलाः ।
सख्यः काश्चिज्जगुरति मधुरम् ॥
तत्रानद्ध ध्वनि धृतरभसौ ।
राधाकृष्णौ ननृततुरतुलम् ॥ ७५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसके बाद नाचने वाली सखियाँ सभ्य बनकर बैठीं। उनमें से कुछ अति मधुर गान करने लगीं। चर्मवाद्य की मधुर ध्वनियों के साथ, जिससे वेग व गति की सृष्टि हुई, राधा-कृष्ण दोनों नाचने लगे। उनके नर्तन की तुलना नहीं है ॥७५॥

तत्ता धिद्धी तति कट धृधि तत्।
तत्ता धिद्धी तति कट घृधि तत् ॥
इत्यन्वास्याम्बुजयुगगनटन्।
वर्णाः कर्णामृतसममधुराः ॥ ७६ ॥

राधा-कृष्ण दोनों जब नाच रहे थे, उस समय 'तता धिद्धी' आदि वाद्य-पाटाक्षर दोनों के मुखरूपी कमलों की सेवा के लिए आये यानी उनके मुख से निकलने लगे; जो कानों के लिए अमृतरस की तरह मधुर लगने लगे ॥ ७६ ॥

परस्परोपात्तकराब्जयोस्तयोः।
भुजोद्धुतिद्योतितरत्न भूषयोः ॥
ताटङ्क तारल्यधुरोयरीकृताः।
ज्योत्स्ना मुखेन्दुं स्नपयत्य आबभुः ॥ ७७ ॥

नर्तन के समय राधा-कृष्ण दोनों एक-दूसरे के कर-कमल पकड़कर नाचते थे। उस समय दोनों के हस्तों के अनेकविध कृत्यों के समय रत्नजड़ित आभूषणों की शोभा चमक रही थी, और नर्तन के समय उनके मुखचन्द्र की ज्योत्स्ना हिलने वाले कुण्डलों पर गिरकर प्रतिफलित होती हुई मानो मुखचन्द्र को स्नान करा रही है ॥ ७७ ॥

मिथोहस्तालम्बार्पित तनुभरो तौ तथा वेगनुन्नौ।
जुघूर्णाते येन स्मरघटकृतो रत्न चक्रैकरूप्यम् ॥
तदागातां वेणीद्वयमपि तयोः पृष्ठसङ्गं विहाय।
भ्रमन्नील श्रीमत् परिधिवरतां तद्बहिः प्राप्य रेजे ॥ ७८ ॥

अब राधा-कृष्ण के परस्पर हस्तग्रहण कर चक्राकार नृत्य का वर्णन करते हैं। वे एक-दूसरे का हाथ पकड़कर एक-दूसरे की देह पर भार देते हुए वेग के आवेश में अति कौशल से इस प्रकार घूमते थे, जैसे मदन रूपी कुम्भकार के दो रत्नमय चक्र हों, एक रत्नविनिर्मित और एक सुवर्ण वर्ण रत्नाङ्कित चक्र हो। उस समय उनके वेणीरूप केशकलाप भ्रमण के आवेग से पीठ का सम्बन्ध छोड़कर आसमान में वर्तुलाकार परिधि के आकार में घूमने लगे। उस समय ऐसी शोभा दिखायी दे रही थी जैसे दोनों मण्डल नीलाकार परिधि के रूप में ऊपर और राधा-कृष्ण चक्रद्वय नीचे घूम रहे हैं ॥ ७८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ततस्तालोपान्तं समयमनुतावङ्गुलिग्रन्थिमुक्तौ ।
पृथङ् नानाभेदं सममनटतां दुर्गमार्गाधिरोहम् ॥
समाप्तौ तु प्रेष्ठोरसि हरिरधाद्दक्षिणं पाणिपद्मम् ।
स्वरामेनैतेन स्पृशदिव कुचं वारितं तत्तयापि ॥ ७९ ॥

चक्रभ्रमणरूप नृत्य के अनुकूल जो ताल चल रहा था, उसके समाप्त होने के पूर्व ही राधा-कृष्ण एक-दूसरे की अंगुलियाँ छोड़कर नृत्य के विविध भेद एक साथ दिखाने लगे। वे साथ-साथ इस प्रकार नर्तन करने लगे, जैसे एक साथ ही दुर्गम मार्ग का अधिरोहण कर रहे हों। ताल की समाप्ति पर श्रीकृष्ण ने अपना दक्षिण करकमल श्रीराधा के वक्षःस्थल पर रखा और श्रीराधा ने भी अपने बायें कर-कमल से स्तन को स्पर्श करने वाले कृष्ण के हस्त का निवारण ताल-समाप्ति-सूचक-अभिनय से किया ॥ ७९ ॥

काचित्तदा वीजयति स्म भूषा- ।
व्यत्यासमस्यत्यपरा, लिलेप ॥
श्रीखण्डकर्पूररसैस्तदङ्गा-
न्येकास्ययोरर्पयति स्म वीटीः ॥ ८० ॥

नृत्य समाप्त होने पर कोई सखी उन दोनों को पंखा झलने लगी, उनके जो आभूषण व्यत्यस्त (अव्यवस्थित) हो गये थे, उन्हें ठीक करने लगी। अन्य एक सखी उन दोनों के अंगों पर चन्दन-कर्पूर युक्त रस का लेप लगाने लगी। अन्य एक ने उन दोनों के मुँह में ताम्बूल के बीड़े अर्पित किये ॥ ८० ॥

लि हन्त्ववर्चीना निजरसनया रासं कथं तं हठा- ।
न्न गीर्यत्रेशाना सकलितदृशां तात्कालिकानामपि ॥
प्रमुस्तं प्रेमाचेत् कमपि चतुरं स्वाधारमाख्यापये-।
त्तदीयैर्माधुर्यैरपहृतधिया तेनापि वर्ण्यो न सः ॥ ८१ ॥

प्रेमलक्षणा भक्ति के बिना रास का वर्णन नहीं हो सकता, अब वह कहते हैं। आधुनिक लोग अपनी जिह्वा से उसका वर्णन हठात् कैसे करेंगे, क्योंकि उन्होंने उसे देखा नही है। श्रीकृष्ण की प्रकटलीला के समय उस काल के जो लोग उसे देखकर अपने नेत्र कृतकृत्य, सफल, तृप्त कर चुके हैं, वे भी उसका वर्णन करने में असमर्थ हैं। प्रेम यदि स्वतंत्र होता और वह जिसमें है, उसको वह प्रेरणा दे सकता है, किन्तु रास की मधुरिमा से प्रेमविवश होने से जिसकी बुद्धि खिच गयी है, वह भी उस रास का वर्णन नहीं कर सकता ॥ ८१ ॥

किं तु शक्तिरतुला कृपा तयोः ।
सा स्वयं शुकमुखेन्दुना जगत् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्योतयन्नलमवैक्षयद्दिशम् ।
धाम विन्दति तयैव सेक्षणः ॥ ८२ ॥

ऐसा होते हुए भी श्रीराधाकृष्ण की अतुलनीय कृपारूप शक्ति से शुकदेवजी के मुखचन्द्र से उस लीला का एक अंश भी सम्पूर्ण जगत् के समक्ष प्रकाशित हो जाय, तो उस दिशानिर्देश से ज्ञान प्राप्त कर रासक्रीड़ा का यथार्थ स्वरूप जाना जा सकता है ॥ ८२ ॥

श्रीमद्विश्वनाथ चक्रवर्ति विरचिते इति श्रीकृष्णभावनामृते
महाकाव्ये रासविलासास्वादनो नाम ऊनविंशः सर्गः ॥

इतिशम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi